कृष्णदास संस्कृत सीरीज २६९

तन्त्रसङ्ग्रहे

मायातन्त्रम्

'निर्मला' हिन्दी अनुवाद सहित

सम्पादक एवं सानुवाद हिन्दी समीक्षक

डॉ. रूपेश कुमार चौहान

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२६९
***

तन्त्रसङ्ग्रहे

मायातन्त्रम्

'निर्मला' हिन्दी अनुवाद सहित

सम्पादक एवं सानुवाद हिन्दी समीक्षक
डॉ. रूपेश कुमार चौहान
एम. ए. संस्कृत एवम् इतिहास
जे. आर. एफ. संस्कृत तथा नेट इतिहास
तदर्थ सहायक प्रोफेसर जाकिर हुसेन कॉलेज, दिल्ली

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७५, सन् २०१८

ISBN : 978-81-218-0418-9

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
(आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

भूमिका

तन्त्र साहित्य कोई सामान्य एवं सीमित साहित्य नहीं है। इसमें लाखों ग्रन्थ आते हैं। असंख्य ग्रन्थ तो अभी संग्रहालयों एवं मठों में पाण्डुलिपि रूप में स्थित हैं तथा अनेकों ग्रन्थ यवन शासकों की क्रोधाग्नि में सदा-सदा के लिये विलुप्त हो गये। इसका प्रमाण नालन्दा विश्वविद्यालय में ग्रन्थों की भस्म दे रही है। जो भी हो, जो भी साहित्य उपलब्ध है, वह कम तथा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह तन्त्र साहित्य केवल हिन्दू साहित्य में ही नहीं है, जैन साहित्य में, नमस्कार मन्त्र कल्प, प्रतिष्ठा कल्प, चक्रेश्वरी कल्प, ज्वालामालिनी कल्प, पद्मावती कल्प, सूरिमन्त्रकल्प, वाग्वादिनी कल्प, श्रीविद्या कल्प, वर्धमान विद्या कल्प, रोगापहारिणी कल्प आदि अनेक तन्त्र ग्रन्थ विद्यमान हैं।

बौद्ध साहित्य में, वसुधारा कल्प, घण्टाकर्ण कल्प, तारा कल्प आदि अनेक ग्रन्थ हैं। वैदिक साहित्य में तो इनका एक अलग भण्डार ही है।

अतः तन्त्रशास्त्र केवल हिन्दुओं का ही साहित्य नहीं है, यह किसी न किसी रूप में सब धर्मों में प्रचलित है।

जब हम तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं तो तनु = विस्तार अर्थ वाली धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय से तन्त्र शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'तन्यते विस्तार्यतेऽनेन इति तन्त्रम्' अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है, वह तन्त्र है तथा यही तन्त्र त्रै = रक्षात्मक धातु से भी बन सकता है। तब इसका अर्थ होगा 'त्रायते साधकान् इति तन्त्रम्' अर्थात् जो साधकों की रक्षा करता है, वह तन्त्र है।

संस्कृत वाङ्मय दो भागों में विभक्त है—निगम और आगम। उसके अनुसार भारतीय संस्कृति निगमागम मूलक है। निगम-आगम क्या हैं, इस विषय में कुलूकभट्ट के अनुवाद इश्वरप्रणीत धर्मग्रन्थ दो प्रकार के हैं—वैदिक और तान्त्रिक। द्विविधा हि ईश्वर प्रणीता मन्त्राग्रन्था वैदिका तान्त्रिकाश्च।

देवी भागवत पुराण के अनुसार 'निगम्यते ज्ञायतेऽनेन इति निगमः'—अर्थात् जिसके द्वारा किसी भी विषय अथवा तत्त्व को जाना जाता है, उसे निगम कहा जाता है।

वैसे भी 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गम्' धातु में तत्रभवः से 'अण्' प्रत्यय से निगम शब्द बना है। 'गम्' धातु जाने, पहुंचने तथा ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होती है तथा 'नि' उपसर्ग का अर्थ निश्चित रूप से है, अतः निगम का अर्थ हुआ कि

निश्चित रूप से किसी तथ्य, तत्त्व अथवा विषय तक पहुंच सके, उसे जान सके, उसे निगम कहा जायेगा। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य ही निगम की संज्ञा का अधिकारी है, क्योंकि वैदिक साहित्य मानव का उचित मार्गदर्शन करता है।

आगम शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः' अर्थात् जिससे कल्याणकारी उपाय बुद्धि में आते हैं, आरोहण करते हैं, वह आगम है।

ऐसे भी यदि हम आगम शब्द की व्युत्पत्ति करें तो 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु में 'अच्' प्रत्यय से आगम शब्द बनता है। आ उपसर्ग आ = समन्तात् के अनुसार समन्त अर्थ में आता है तथा इसका अर्थ विशिष्ट क्रम भी है, समन्त का अर्थ होगा सम्यक् प्रकार से अन्त तक, जो पूर्ण की पराकाष्ठा है तथा गम् धातु तो जाने, पहुंचने और जानने के अर्थ वाली है ही, अतः आगम शब्द का अर्थ हुआ जिसके द्वारा सम्यक् प्रकार से आदि से अन्त तक विशिष्ट क्रम से तत्त्व विषय अथवा तथ्य तक पहुंचा जा सके, उसे आगम कहा जायेगा। इस व्याख्या के अनुसार आगम-निगम से भी महत्त्वपूर्ण साहित्य माना जा सकता है। इसीलिये जिन धर्मनिष्ठ विद्वानों की तन्त्रमार्ग पर असीम श्रद्धा है, उन्होंने तन्त्र साहित्य को पञ्चम वेद कहा है। बंगाल प्रदेश के शाक्त विद्वान् तो तन्त्रग्रन्थों को वेदों से भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

प्राचीनकाल से ही निःश्रेयस साधना की दो धारायें भारत में चली आ रही हैं। परम्परानुसार आगमशास्त्र (तन्त्र साहित्य) के प्रवर्तक आदिनाथ श्री शंकराचार्य माने गये हैं, क्योंकि इन्होंने ही इसका सामाजिक प्रवर्तन किया है, परन्तु तन्त्र साहित्य के आदिकर्ता स्वयंभू नारायण ही कहे गये हैं। शारदातिलक में आगम का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि जो शंकर के मुख से आये हुए हैं तथा पार्वती के कानों में गये हुए हैं, उस परम पावन शास्त्र को आगम कहा गया है।

आगतं शिववक्त्रेभ्योः गतं च गिरिजाश्रुतौ।
तदागम इति प्रोक्तं शास्त्रं परम पावनम्।।

इस उपर्युक्त श्लोक में आगम (तन्त्र साहित्य) की भी वेदों के समान ईश्वरनिर्मितता सिद्ध होती है। तन्त्रशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रन्थकार भास्कर राय के अनुसार वेदों का अनुगमन करने के कारण तन्त्रों का परतः प्रामाण्य है। कुलार्णव तन्त्र में कौलागम को वेदात्मक शास्त्र कहा गया है। इस परम्परा के अनुसार आगम (तन्त्रशास्त्र) वेदतुल्य माना गया है। सम्भवतः इतना ही भेद है कि वेद सवर्णों के

लिये ग्राह्य है; परन्तु आगम चारों वर्णों के लिये ग्राह्य है, परन्तु मैं इस परम्परा को नहीं मानता हूँ। इस परम्परा ने ही हिन्दू धर्म का बहुत ह्रास किया है।

तन्त्र की प्राचीनता—तन्त्र शब्द के व्यवहार को देखते हुए यह कहना मिथ्या न होगा कि तन्त्र प्राचीन तो है, परन्तु वेदों से प्राचीन नहीं है, क्योंकि प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में तन्त्र करघे के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/228, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चरक, बृहस्पति आदि ने तन्त्र का अर्थ युक्ति या सिद्धान्त माना है। वाद में अथर्ववेद में और प्रायः अधिकांश पुराणों में तन्त्रविद्या का परिचय प्राप्त होता है। अतः तन्त्रविद्या अधिक प्राचीन नहीं है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है कि यह महाविद्या वशिष्ठ ऋषि के समक्ष प्रकट हुई थी। उसने इसे जानने के लिये वशिष्ठ से बुद्ध के पास चीन देश जाने को कहा। यही नहीं, यह भी कहा कि उस बौद्ध देश चीन को जाओ, जहाँ अथर्ववेद भी है तथा उन्होंने वहाँ पञ्चमकारों के उपयोग का निर्देश भी दिया। (रुद्रयामल तन्त्र, पटल 7, श्लोक 121-123, 125, 135, 152-153, 157-158, 160-161)। इससे तो यह भी सिद्ध होता है कि यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र विद्या का उत्तम ग्रन्थ अथर्ववेद चीन से लाया गया अथवा चीन देश में महात्मा बुद्ध द्वारा ले जाया गया हो, फिर बाद में लाया गया है।

वैसे ऐन्द्रजालिक विद्या के रूप में 'वेदों' में इसकी चर्चा मिलती है, परन्तु जादू-टोना के रूप में इसकी निन्दा की गई है। अथर्ववेद में वशीकरण और रोगोत्पादक कीड़ों को नष्ट करने वाले मन्त्र मिलते हैं (अ0 3/25 तथा 2/30)। विन्टरनित्ज के अनुसार पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व भी तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हुई होगी।

एल0 वेगर के अनुसार सातवीं शती में ही चीनी अनुवाद हुए थे, तन्त्रों में दुर्गापूजा का बहुत महत्त्व है। यह दुर्गा परवर्त्ती वैदिक काल की देवी है। तन्त्रों के अनेक तत्त्व अथर्ववेद ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं। पुराणों में स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, कालिकापुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में तन्त्रों का वर्णन मिलता है। यही नहीं, महाभारत में भी तन्त्रों का वर्णन उपलब्ध होता है। विन्टरनित्ज महोदय का दृष्टिकोण तन्त्रविरोधी प्रतीत होता है। वे पुराणों और तन्त्रों को हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ मानते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तो पुराणों और तन्त्रग्रन्थों को पाखण्डियों के ग्रन्थ कहा है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाये तो वास्तव में पुराण और समस्त तन्त्रग्रन्थ पाखण्डियों की रचनायें हैं, फिर भी इनमें कहीं-कहीं वैज्ञानिकता अवश्य झलकती

है। यद्यपि विन्टरनित्ज महोदय ने यह भी कहा हैं कि यद्यपि तन्त्र स्पष्टतः वेदों के विरोधी नहीं हैं, तथापि उनका कहना है कि वेदविहित कर्म हमारे युग में नहीं चल सकते। कुलार्णव तन्त्र में वेदों की निन्दा की गयी है। उसमें वेदों को गणिका इव कहा है, तथापि समयमार्ग का सम्पूर्ण साहित्य पञ्चशुभागम वेदों को ही प्रमाण मानता है।

तन्त्र साहित्य की विशेषतायें—परम पूज्य महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा माननीय विन्टरनित्ज के कथनों में अवश्य सारगर्भिता है, परन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि तन्त्र साहित्य निराधार और निरर्थक है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है, साथ ही इनमें आगम और निगम दोनों परम्पराओं का पालन किया गया है। आगम को जहाँ तन्त्राम्नाय और निगम को वेदाम्नाय कहा गया है, वहाँ इसके अन्य अर्थ भी हैं। इन ग्रन्थों में पार्वती शिव सम्वाद है। पार्वती शिव से प्रश्न करती हैं, शिव उनका उत्तर देते हैं। अतः जव पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव गुरु की भाँति उत्तर देते हैं, तब उसे आगम कहते हैं तथा जब शिव शिष्य की भाँति प्रश्न करते हैं और पार्वती गुरु की भाँति उत्तर देती हैं, तब उस ग्रन्थ को निगम कहते हैं।

तन्त्रसाहित्य पूर्ण रूप से दर्शनशास्त्र पर अवलम्बित है। तन्त्रसाहित्य में अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं, जो केवल ब्रह्मचिन्तनपरक हैं। जैसे कि महार्णवतन्त्र एक तन्त्रग्रन्थ है, जिसमें शाक्त सम्प्रदाय का सर्वोत्तम रूप पाया जाता है। भले ही यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं, फिर भी हर प्रसाद शास्त्री के अनुसार गीता के बाद यही रचना सम्भवतः सबसे लोकप्रिय हुई है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है। यहाँ परमात्मा पिता के रूप में न होकर माता के रूप में आराध्य रहा है। इसमें शक्ति प्रकृति की पूजा की गयी है। शाक्त दर्शन में प्रयुक्त पराप्रकृति, मूलप्रकृति और जगन्माता आदि शब्द शक्ति के ही पर्याय हैं। समस्त पौराणिक देवियाँ तन्त्र साहित्य में पार्वती, उमा, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, भैरवी आदि जगन्माता के रूप में स्वीकार की गयी हैं। अद्वैतवाद इस तन्त्रसाहित्य की विशेषता रही है। वेदों ने जहाँ निराकार ब्रह्म को ही एक सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता माना है, वहाँ शाक्त दर्शन ने भी शक्ति को ही सब कुछ स्वीकार किया है, अतः विन्टरनित्ज महोदय का कथन ठीक है कि भारतीय बुद्धि बहुत पहले से अनेक दिखायी देने वाले तत्त्वों में एकता खोजने में अभ्यस्त रही है, अतः देवी को किसी नाम से पुकारा जाये, वह सारे देवों की शक्तियों का एक रूप है। ब्रह्माण्ड की रचयिता ब्रह्मा की वह ब्राह्मी शक्ति सरस्वती है। पालन करने वाले विष्णु की वह

वैष्णवी शक्ति लक्ष्मी है तथा संहार करने वाले शिव की वह रौद्री शक्ति है, ये सब उसी में स्थित हैं। जब यह महाकाल को आत्मसात् कर लेती हैं, तब आद्या काली कही जाती हैं। यही शक्ति महायोगिनी के रूप में जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करती हैं। इसी शक्ति को त्रिपुरा भी कहा गया है। शक्ति की निम्न विशेषतायें हैं। **शक्ति स्वतन्त्र है।** शक्ति की स्वतन्त्रता ही तन्त्रशास्त्र की मान्यता है। शैव दार्शनिक 'शिव' को स्वतन्त्र मानते हैं, परन्तु शाक्त दार्शनिक शक्ति को स्वतन्त्र मानते हैं। हयग्रीव ने कहा है कि 'शक्तिरेव कारणम्' अर्थात् शक्ति ही समस्त प्रपंच का कारण है।

भगवती सर्वयोनि है—जिस प्रकार समस्त वृक्ष बीज का विकास है और सूक्ष्म रूप से बीज का स्वरूप है, उसी प्रकार भगवती भी बीज रूप है। यह शक्ति तीन रूपों वाली है—1. वामा शक्ति, 2. ज्येष्ठा शक्ति और 3. रौद्री शक्ति। समस्त विश्व की जो परमा शक्ति है, जो सम्पूर्ण संसार की परमेश्वरी है, वही भगवती त्रिपुरा हैं। उस शक्ति के तीन रूप हैं—1. ज्ञानशक्ति, 2. क्रिया शक्ति और 3. इच्छाशक्ति।

तन्त्र में पंचतत्त्व—शक्ति की आनन्दपूर्ण सृष्टि का भौतिक कारण पंचतत्त्व हैं, ये पंचतत्त्व पंचमकार के रूप हैं। पहला तत्त्व है—तेज, दूसरा है—वायु, तीसरा है—जल, चौथा है—पृथ्वी और पाँचवाँ है—आकाश (महानिर्वाण तन्त्र, 7/103, 111)।

इन पंच तत्त्वों को महानिर्वाण तन्त्र में बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। वहाँ कहा गया है कि इनका प्रयोग दीक्षितों के चक्र में ही हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री का स्थान पुरुष के वाम भाग में है, शायद इसी कारण इसे वामाचार कहा गया है। वामाचार का अर्थ है—वामा (स्त्री) का आचार। यह भी विधान है कि चक्रपूजा में जाति का भेद नहीं है, किसी भी जाति की नारी चक्रपूजा की अधिकारिणी है। जहां पंचमकार पूजा में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन की बात आती है, उसके विषय में महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है कि जो अत्यधिक मद्यपान करने वाले हैं, वे देवी के सच्चे भक्त नहीं हो सकते। चक्रपूजा में किसी पराई स्त्री के अतिरिक्त मनुष्य अपनी पत्नी का भी उपयोग कर सकता है। मद्य के स्थान पर दूध, चीनी, शहद आदि के प्रयोग की भी आजादी दी गयी है। मैथुन के स्थान पर देवी के चरणकमल की पूजा की जा सकती है। सांसारिक पदार्थों एवं विषयों से पूर्ण विरक्त दिव्य भाव में स्थित साधक के लिये ही पंचतत्त्वों के स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मक वस्तुओं का प्रयोग विहित है। कुछ भी हो, यह तो

मानना ही होगा कि तन्त्र साहित्य में पंचमकार पूजा है। अब उसे यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि वह पराई स्त्री हो अथवा अपनी हो, उसकी पूजा तो करनी है। इसीलिये तन्त्र साहित्य को समाज ने व्यभिचार के रूप में तिरस्कृत कर दिया है। वैसे कुलार्णव तन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया कि पंच मकार जो मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन हैं, उनके अर्थ अन्य ही हैं।

मद्य—मद्य का अर्थ बाहरी मदिरा नहीं है। मद्य का अर्थ ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल से बहने वाला अमृत है।

मांस—पुण्य और पाप रूपी पशुओं को ज्ञान रूपी खड्ग के द्वारा मार कर अपने मन को ब्रह्म में लीन करना मांसभोग है।

मत्स्य—मत्स्य एक रूप की साधना है, जो साधक प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास को बंद करके कुम्भक के द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना के भीतर ले जाता हैं, वही यथार्थ रूप से मत्स्य साधना है। शरीर में इडा तथा पिङ्गला (गङ्गा-यमुना) में प्रवाहित होने वाले मत्स्य हैं।

मुद्रा—विजयतन्त्र के अनुसार दुष्ट व्यक्ति के संग का त्याग करना मुद्रा है।

मैथुन—सहस्रार में स्थित शिव तथा कुण्डलिनी या सुषुम्ना तथा प्राण के मिलन का नाम मैथुन है।

इन पंचमकार के विषय में कुलार्णव तन्त्र में तो यहाँ तक कह दिया है कि केवल शराब पीने से ही व्यक्ति को सिद्धि मिल जाती है तो सभी पापी मदिरापान कर सिद्धि को प्राप्त कर लें। मांस खाने से यदि सिद्धि हो जाये तो सभी मांसभक्षी सिद्ध पुरुष हो सकते थे तथा मैथुन करने से ही यदि सिद्धि हो जाये तो सभी लम्पटी पुरुष अनायास मुक्त हो जायें। अतः पंच मकारों को व्यभिचार अर्थ में नहीं लेना चाहिये, परन्तु इस प्रकार के अर्थ करना कुछ अटपटा-सा लगता है, क्योंकि जिस कुलार्णव तन्त्र में मांस खाने की इतनी आलोचना की गयी है कि मांस खाने से ही सिद्धि हो जाये तो फिर सभी मांसभक्षी सिद्धि प्राप्त कर लें, उसी में मांस को शुद्ध करने का विधान क्यों किया गया तथा कुलार्णव तन्त्र 5/44 मांस की महिमा क्यों गायी गयी तथा देवता और द्विजों के लिये हिंसा को क्यों वैध कहा गया तथा मांस के अंगों में ब्रह्मा आदि का वास क्यों बताया गया। यही नहीं, उसी कुलार्णव तन्त्र में अनेकों प्रकार की मदिराओं के निर्माण की विधि बतायी गयी है। साथ ही यह भी कहा गया है कि सुरा को देखने मात्र से सब पापों से छुटकारा हो जाता है, उसकी गंध सूंघने मात्र से सौ यज्ञों का फल मिलता है। मद्य

के स्पर्श मात्र से कोटि तीर्थों का पुण्य मिलता है तथा उसको पीने से चारों प्रकार की मुक्ति साक्षात् ही प्राप्त हो जाती है। यही नहीं यहाँ तक कह दिया कि सुरा की गन्ध में इच्छाशक्ति, उसके रस में क्रियाशक्ति एवं उसके स्वाद में ज्ञानशक्ति रहती है और उल्लास में पराशक्ति रहती है।

सुरादर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
तद्गन्धाघ्राणमात्रेण शतक्रतु फलं भवेत्।।
मद्यस्पर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं भवेत्।
देवि तत्पानतः साक्षाल्लभेन्मुक्तिं चतुर्विधा।।
इच्छाशक्ति सुरामोदे ज्ञानशक्तिश्च तद्रसे।
तत्स्वादे च क्रियाशक्तिस्तदुल्लासे परास्थिताः।।

—कुलार्णव तन्त्र, पंचम उल्लास

इस प्रकार ये परस्पर विरोधी कथन तन्त्र साहित्य की महत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। अतः क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसका परिणाम उभर कर सामने नहीं आता है, अतः जिसको जैसा उचित लगे, वही उचित है।

परन्तु एक दृष्टि से यह देखा जाये कि समाधि किस प्रकार से शीघ्र और उचित लगती है, तो उस दृष्टि से मैथुन प्रक्रिया अधिक उचित है तथा उसमें जो पीठों का वर्णन किया है, वह तो बहुत ही कठिन है, क्योंकि तन्त्र में चार पीठों का वर्णन है, वे हैं—1. श्मशान पीठ, 2. शव पीठ, 3. अरण्य पीठ, 4. श्यामा पीठ।

श्मशान पीठ—जिसमें प्रतिदिन रात्रि में श्मशान भूमि में जाकर यथाशक्ति विधि से मन्त्र का जाप करना है।

शव पीठ—में किसी मृतक की लाश पर बैठ कर मन्त्र जाप करना है, उसे शवपीठिका कहा जायेगा। अब कैसे और कहाँ कोई मुर्दा रोज मिलेगा, जिस पर बैठ कर मन्त्र जाप किया जा सके।

अरण्य पीठ—इसमें किसी वन में जाकर मन्त्रों का जाप करना है, वह भी ऐसे वन में, जहाँ हिंसक प्राणी भी हों, पता नहीं वे हिंसक प्राणी उस मन्त्री को कैसे छोड़ देंगे।

श्यामा पीठ—यह चौथी श्यामा पीठ है। इसकी साधना तो सबसे कठिन है। इसमें किसी षोडशवर्षीया सुन्दरी को वस्त्ररहित कर सम्मुख बैठा कर ब्रह्मचर्य में स्थिर रह कर मन्त्र साधना करे।

अतः यह मार्ग बहुत ही कठिन और असम्भव-सा प्रतीत होता है, परन्तु

हमें नीरक्षीरविवेक द्वारा तन्त्रसाहित्य की वरणीय विद्याओं को ग्रहण करना चाहिये, उनके दोषों पर विचार नहीं करना चाहिये।

तन्त्र साहित्य की महत्ता पर विचार करने से पूर्व हम तन्त्रों के वर्ण्य विषयों पर प्रकाश डालते हैं—

तन्त्रसाधना के चार खण्ड—1. ज्ञानखण्ड, 2. योगखण्ड, 3. क्रियाखण्ड, 4. चर्या खण्ड। जिन्हें पाद भी कह सकते हैं।

1. ज्ञानखण्ड (ज्ञानपाद)—

1. ज्ञानपाद—यह दार्शनिक विवेचन से सम्बन्ध रखता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद का समर्थन है। यह अक्षरों, पदों, मन्त्रों से सम्बद्ध है। यह तन्त्रशास्त्र का अपना निजी दर्शन है, जो सांख्य और वेदान्त से मेल खाता है। अतः यहाँ कोई तन्त्र एकदम अद्वैतवादी है तो कोई द्वैत का भी समर्थन करता है।

कहा भी गया है कि—

अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्तिचापरे।
ममतत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत विवर्जितम्।।

—कुलार्णवतंत्रम्

तंत्रों के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो अलग-अलग शक्तियां हैं, परन्तु मूल तत्त्व एक ही है। इनमें प्रकृति के पाँच कार्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह। तथा उसकी पाँच शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति। मनुष्य का शरीर एक ब्रह्माण्ड है। शरीर ही विश्व का रूप है। इसी प्रकार शिव, शक्ति, जीव एवं विश्व सभी एकात्मक हैं।

मुक्ति का अर्थ कुछ पाना नहीं है, प्रत्युत विस्मृत विराट् की पुनः स्मृति 'प्रत्यभिज्ञा' है। 'मैं शिव हूँ' इसकी अभिव्यक्ति जीवन का परम लक्ष्य है।

2. योगपाद—

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में अग्रसर होने के लिये जिन आत्मिक शक्तिकेन्द्रों को जगाने की आवश्यकता होती है, वे शरीर में मेरुदण्ड के निम्नतम भाग से उच्चतम भाग तथा उससे भी ऊपर शून्य तक फैले हुए हैं। वे हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा, अर्धेन्दु (अर्धचन्द्र) रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना और महाबिन्दु इसी मार्ग में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत रूपी चेतना के अनेकों पर्वतों को लांघना पड़ता है। तब महाबिन्दु तक पहुँचना होता है तथा इसके लिये षट्चक्र

और ग्रन्थित्रय (तीन ग्रन्थियों) का भी भेदन करना होता है। साथ ही कुण्डलिनी को भी जगाना पड़ता है। इस साधना के मार्ग में सफलता के लिये साधक को सात साधन पंचकोश साधन की भी आवश्यकता होती हैं। इसके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ साधनों की भी आवश्यकता होती है। अष्टांग योग को सफल बनाने के लिये 1. प्राण, 2. बिन्दु, 3. नाद, 4. मन, 5. आत्मा की साधना की आवश्यकता होती है। ज्ञानपाद श्रवण, मनन और निदिध्यासन से सिद्ध हो सकता है, किन्तु विचारों की शुद्धता, पिण्डशुद्धि, प्राणशुद्धि, बिन्दुशुद्धि, नादशुद्धि एवं मनःशुद्धि के बिना असम्भव हैं! योग पुरुष को प्रकृति से अलग करके उसके अपने स्वरूप का दर्शन कराता है। इसी को कैवल्य की स्थिति कहा जाता है।

सांख्य में कहा गया है कि यह प्रकृति जो मन, बुद्धि, अहंकार एवं सेन्द्रिय शरीर वाली है, वह अपने मन द्वारा इन्द्रियों को भटका कर तरह-तरह के आनन्द दिलाती हुई पुरुष को अपने वशीभूत कर लेती है, उसे उसके लक्ष्य कैवल्य से भटकाती रहती है। अतः कैवल्य की प्राप्ति योग द्वारा ही सम्भव है तथा चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है, जो योगदर्शन का मूल सिद्धान्त है। अतः इस योग को प्राप्त करने के लिये साधक अभ्यास और वैराग्य की साधना का सहारा लेता है, क्योंकि 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।' उसे वितर्क विचार आनन्द और अस्मिता से युक्त चित्तवृत्तियों के निरोध रूप सम्प्रज्ञात समाधि एवं निर्बीज निर्विकल्प की भी साधना करनी पड़ती है। तब योगी अपने चरम लक्ष्य कैवल्य, चित् शक्ति (आत्मा) की स्वरूप प्रतिष्ठा या अपने वास्तविक स्वरूप अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इस मार्ग में ऊर्जा प्राप्त करने हेतु साधक छः चक्रों का भेदन, पंचभूतों पर विजय, भूतशुद्धि, कोशशुद्धि और मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग की साधना भी करनी पड़ती है तथा मुख्य रूप से छः चक्रों का भेदन करने पर सोयी हुई कुण्डलिनी को जगाकर शक्ति शिव संयोग रूप समरसता प्राप्त करते ही उसे अणिमादि सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है और फिर साधक स्वतः शिव बन जाता है।

सांख्य कारिका में बताया गया है कि प्रकृति और पुरुष का साथ अंधे और लंगड़े का साथ है। दोनों ही अलग चल नहीं सकते। प्रकृति अंधी और पुरुष लंगड़ा है, अतः इस संसार को चलाने के लिये दोनों का यह समझौता है, अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार हो जाये, यही हो रहा है। अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार है, दोनों मिल कर संसार चला रहे हैं।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

—(सांख्यकारिका 21)

यही सृष्टि के विकास की दार्शनिक दृष्टि है। सांख्यतंत्र और योग दोनों ही इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं तथा तन्त्र भी इसका समर्थन करता है। अतः पुरुष प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करे यही तन्त्र का लक्ष्य है।

अब मोक्ष क्या है, इसे बताते हैं।

मोक्ष का स्वरूप—सांख्य का योग और तन्त्र तीनों का ही लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कराना है, परन्तु तीनों ने मोक्ष को अलग-अलग माना है।

योग एवं सांख्य के अनुसार पुरुष को प्रकृति से अलग कराना मोक्ष है, परन्तु तन्त्र की दृष्टि में पुरुष और प्रकृति का मिलन करना मोक्ष है, अतः तन्त्र की मुक्ति सारगर्भित है।

तन्त्रशास्त्र का तृतीय पाद (क्रियापाद)—क्रियापाद में मन्दिर-मूर्ति आदि के निर्माण की विधि का वर्णन है। तन्त्रशास्त्र की यह विशेषता है कि उसने समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिये उपासना की संस्थायें, मन्दिर, याग, तीर्थयात्रा के पुण्य स्थल, भैरवीचक्र, श्रीचक्र आदि का भी विधान किया है।

तन्त्रशास्त्र का चतुर्थ पाद (चर्यापाद)—इसमें विभिन्न क्रियाओं, उत्सवों एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया जाता है। तन्त्र में ही अन्तिम चरण चर्यापाद पूजा के क्रिया कलापों का विवेचन करता है, जो कि साधक को उसकी उपासना के महत्त्वपूर्ण मार्ग के रूप में उपदिष्ट है। चर्यापाद में भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधकों की भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना की विवेचना की गयी है।

तन्त्रशास्त्र में भावत्रय—

तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्

अतः इसमें तीन भाव हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इन्हीं को दिव्यभाव, वीरभाव और पशुभाव कहा गया है।

सात्त्विक साधकों के लिये दिव्य भाव है। राजसिकों के लिये वीर भाव है और तामसिक साधकों के लिये पशु भाव है।

यहाँ पहले पशुभाव से गुजरना है, फिर वीरभाव में विकास करना है, अन्त में दिव्यभाव रूपी महाफल को प्राप्त करना है। कहा है कि—

सर्वे च पशवः सन्ति, तलवद्भूतले नराः।
तेषां ज्ञान प्रकाशाय, वीरभावः प्रकाशितः।।

पशुभाव में द्वैतभाव बना रहता है, परन्तु वीरभाव में द्वैत का कुछ अंश शेष रहता है, परन्तु दिव्यभाव में साधक पूर्णतः द्वैतभाव को दूर करके परमात्मा और आत्मा में एकरूपता प्राप्त कर लेता है।

तन्त्र में आचार-विचार—तन्त्रसाहित्य में सात प्रकार के आचार कहे गये हैं। वे हैं—1. वेदाचार, 2. वैष्णवाचार, 3. शैवाचार, 4. दक्षिणाचार, 5. वामाचार, 6. सिद्धान्ताचार और 7. कौलाचार।

वेदाचार—इसमें वेदोक्त रीति से यज्ञ करना, मांसभक्षण न करना, परस्त्री चिन्तन न करना, लोभ, भोग, कुटिलता, गुरुनिन्दा त्याग आदि अनिवार्य है।

वैष्णवाचार—यह भी वेदाचार के ही समान है। इसमें निरन्तर विष्णु के प्रति समर्पित भाव रखना है। लगातार "सर्वं विष्णुमयं जगत्" की भावना रहनी चाहिये।

शैवाचार—वेदाचार क्रम शैव में मान्य है, परन्तु शैवाचार में पशुहिंसा विहित है।

दक्षिणाचार—दक्षिणामूर्ति द्वारा प्रवर्तित यह आचार है, इसमें परमेश्वरी का पूजन वेदाचार क्रम से करना है।

वामाचार—वीरभाव स्थित साधकों को वामाचार ग्रहण करना चाहिये तथा इसमें पंचतत्त्वों द्वारा देवता की अर्चना, विभिन्न द्रव्यों द्वारा अर्चना करनी चाहिये तथा साधना की सफलता के लिये साधक को अपने इष्ट कार्य में तत्पर रहना चाहिये तथा सभी प्रकार के पुष्प, दीप, नैवेद्य से अर्चना करते हुए साक्षात् शिव बन कर प्रकृति की पूजा करनी चाहिये।

साक्षात् शिवमयो भूत्वा प्रकृतिं परमां भजेत्।

साधक को चाहिये कि वह महामंत्र की साधना करके अपने में दिव्यभाव का उदय करके कौलाचार का अभ्यास करना चाहिये। तब फिर अपने को देवता जान कर आगम विधान से सूक्ष्म तत्त्वपूर्वक भाव पूजा करनी चाहिये।

सिद्धान्ताचार—शान्ति और इन्द्रियदमन का आश्रय लेकर यज्ञ करते हुए होकर एवं शाक्ततन्त्र शास्त्र का अनुसरण करते हुए आचरण करना चाहिये।

अपनी आत्मा में परतत्त्व की स्थिति मानकर तथा अपने को परमात्ममय समझ कर तथा अपनी आत्मा के सत्य रूप को निरन्तर जानते हुए जीवन जीने से अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है। ऐसा योगी सालम्ब योगी माना जाता है (भावरहस्य, अ0 12)।

कुलाचार—

आचारैस्तु विहीनोऽपि ब्रह्मभावरतः सदा।
कौलाचारः स विज्ञेयः पूर्णानन्द परायणः।।

अर्थात् जो आचारों से विहीन भी हो, परन्तु सदा ब्रह्म भाव में रहे और पूर्ण आनन्द परायण हो, वही वृत्ति कौलाचारी वृत्ति है।

अतः कुल शब्द से कुलाचार बना है, अतः कुल शब्द को भी जानना आवश्यक है। अतः विद्वानों ने पंचभूतमय इस समस्त चराचर ब्रह्माण्ड जीव और प्रकृति तत्त्व को कुल कहा है।

कुल और अकुल—महाशक्तिरूपिणी कुण्डलिनी कुल है तथा अकुल शिव को कहा गया हैं। जो शुद्धसत्त्वगुणमय तथा विभु हैं।

कुलं कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।
अकुलन्तु शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्त्वमयो विभु।।

कुलीन—जो साधक दोनों परम तत्त्वों शक्ति एवं शिव को जानता है, वह वर्णभेद न रखने वाला, परम श्रेष्ठ साधक कुलीन कहा जाता है।

तपस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः।
कुलीनः परमः सोऽपि वर्णभेदविवर्जितः।।

पंच मकारों के विषय में पहले ही बता दिया गया है।

कौलार्णव तन्त्र में तो योग ध्यान धारणा यम नियम आदि को भी छोड़ने का विधान किया गया है। कौलावस्था होने पर नियमों, बन्धों, ग्राह्य वस्तुओं, समाधि को भी त्यागने का विधान है।

तान्त्रिक अद्वैतवाद—वैसे तो तन्त्र में अनेकों प्रकार की दृष्टियाँ हैं, परन्तु मूल रूप से तन्त्र में अद्वैत दृष्टि पायी जाती है। कौलमत और समयमत भी अद्वैतवादी हैं, यद्यपि कौल स्वयं द्वैताद्वैत विलक्षणवादी मानते हैं तथापि उनकी मूल चेतना अद्वैतनिष्ठ है।

कौल धारा के महान् दार्शनिक परशुराम जी कहते हैं कि कञ्चुक ही जीव एवं परशिव के मध्य भेदक तत्त्व है, अतः कञ्चुक के हटते ही जीव और परशिव में कोई भेद नहीं रह जाता।

कुलार्णव तन्त्र में 'अहं ब्रह्मास्मि' की अद्वैतनिष्ठ दृष्टि स्वीकारते हुए कहा गया है कि—

क्षणं ब्रह्मास्मीतिं यः कुर्यादात्मचिन्तनम्।
तत्सर्वं पातकं हन्यात् तमः सूर्योदये यथा।।

यदि मैं ब्रह्म हूँ, यह क्षण भर के लिये आत्मचिन्तन करे तो जैसे सूर्य

अन्धकार को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार साधक के सब पाप नष्ट हो जाने चाहियें।

जीव की शिवरूपता—कौलदर्शन में जीव और शिव की एकरूपता होती है तथा जीव इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीव ही शिव है, शिव ही जीव है तथा वह जीव केवल शिव है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

पाशबद्धः स्मृतो जीव पाशमुक्तः सदाशिवः।

अर्थात् इस सेन्द्रिय शरीररूपी जाल में फँसा हुआ जीव जीव है तथा इससे मुक्त हुआ जीव सदाशिव है।

जातिवाद विहीनता—तन्त्रशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जातिवादिता नहीं है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि 'तथा श्रीचक्रमध्ये तु जातिभेदो न विद्यते।' यही नहीं यहाँ तक कहा गया है कि इस चक्र में जातिभेद नहीं है, सब शिव के समान माने गये हैं।

जीवन्मुक्ति—तन्त्र साहित्य में साधक का लक्ष्य मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त करना नहीं है। तन्त्र के अनुसार जीवन्मुक्त का अर्थ है कि जो साक्षात् जीता हुआ मरे के समान स्थित रहता है। न सुनता है, न देखता है, न बैठता है और न चलता है और न सुख को जानता है और न दुःख से संलिप्त होता है और काष्ठ के समान न कुछ जानता है। यह स्थिति तो एक पागल की ही कही जा सकती है, परन्तु मेरे विचार से जीवन्मुक्त वह कहा जायेगा, जिसने कि जीते हुए ही समस्त काम-क्रोध-लोभ-मोह और अहंकार का परित्याग कर दिया है। सब कुछ त्याग कर समाज एवं देश सेवा में लग गया है।

सबमें चैतन्य की कल्पना—तन्त्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें सभी चर और अचर में चेतन तत्त्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। इसमें जड़ का अर्थ चेतनताहीन होना नहीं है, अपितु चेतन तत्त्व का सोया हुआ होना या फिर अल्पांशता है। यह वास्तव में वैज्ञानिक रहस्य है तथा तन्त्र साहित्य सबको चैतन्ययुक्त देखना चाहता है। तन्त्र के अनुसार शरीर, मन, बुद्धि, आसन, माला, दिशा, शरीर के अंग मन्त्र और देवता सभी का चैतन्यीकरण आवश्यक है। इसीलिये कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

मन्त्राश्चैतन्यसहिता सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्।।

अर्थात् चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सब सिद्धि कराने वाले हैं। चैतन्यरहित मन्त्र तो केवल वर्ण कहे गये हैं।

तन्त्र में दीक्षा एवं गुरु का महत्त्व—तन्त्र में दीक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। दीक्षा विना साधक का साधना मे प्रवेश कदापि सम्भव नहीं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अदीक्षित व्यक्ति की जप-तप आदि सारी साधनायें व्यर्थ हो जाती हैं।

दीक्षाओं के अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों में बताये गये हैं। परशुराम कल्पसूत्र के अनुसार दीक्षायें चार प्रकार की हैं—1. शाक्ती दीक्षा, 2. शाम्भवी दीक्षा, 3. मान्त्री दीक्षा, 4. शाक्ती शाम्भवी और मान्त्री तीनों प्रकार की दीक्षा। किसी तन्त्र में दीक्षा के 7 तथा 8 भेद बताये हैं। 1. समय दीक्षा, 2. विशेष दीक्षा, 3. साधिका दीक्षा, 4. पुत्रक दीक्षा, 5. वेध दीक्षा, 6. पूर्ण दीक्षा, 7. आचार्य दीक्षा और 8. निर्वाण दीक्षा।

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार दीक्षा तीन प्रकार की हैं—1. स्पर्शी दीक्षा, जो स्पर्श से दी जाती है। 2. दृग्दीक्षा, आँखों से देख कर दी जाने वाली दीक्षा। 3. मानसी दीक्षा, मन से दी जाने वाली दीक्षा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों के अनुसार दीक्षा के भिन्न भेद बताये हैं। यहाँ विषय विस्तार भय से सबका वर्णन सम्भव नहीं है। तन्त्र साहित्य में दीक्षा का अत्यन्त महत्त्व है। दीक्षा गुरुकृपा या शक्ति का आना माना जाता है। तन्त्र में विना गुरु के केवल शास्त्राध्ययन से सफलता सम्भव नहीं, तन्त्र में गुरु द्वारा ही आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। साधना निर्बलों के लिये नहीं 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' दीक्षा का कार्य है साधक को नीचे जाने से रोकना और फिर उसे आगे जाने का मार्ग दिखाना। तथा इसके लिये आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। आध्यात्मिक शक्ति के विना तात्त्विक सिद्धि कदापि सम्भव नहीं।

तन्त्र में ज्ञान का महत्त्व—तान्त्रिकों में साधन पद्धति सर्वसाधन प्रेमी रही है, उन्होंने ज्ञान, भक्ति और योग तीनों मार्गों को स्वीकार किया है, परन्तु ज्ञानमार्ग को विशेष महत्त्व दिया है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि 'ज्ञानवान्मानवः प्रोक्तः ज्ञानहीनः पशुः प्रिये।' अर्थात् ज्ञानवान् मानव कहा गया है, ज्ञानहीन तो पशु है। ज्ञान भी दो प्रकार का है, एक आगमादि ग्रन्थों से प्राप्त, दूसरा स्वविवेक से प्राप्त, यहाँ दोनों को स्वीकार किया गया है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध—तन्त्र में दो प्रकार के गुरु माने हैं। एक गुरु लौकिक गुरु हैं, जो दीक्षा देते हैं तथा दूसरे गुरु वे 'सदाशिव' हैं, जो परम ब्रह्म स्वरूप हैं, वे गुरुओं के भी गुरु हैं। यहाँ पर दीक्षा गुरु के विषय में बताया जा रहा है कि गुरु और शिष्य की एकता ही दोनों के सम्बन्धों का आदर्श है। परात्रिंशिका विवरण के अनुसार 'गुरु शिष्य पदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः,

पूर्वोत्तर पदैर्वाक्यस्तन्त्रं समवतारयत्।' अर्थात् गुरु शिष्य पद में स्थित होकर स्वयं सर्वोच्च गुरु सदाशिव ने पूर्वोत्तर वाक्यों द्वारा इस तन्त्र को सृष्टि पर उतारा था। इससे गुरु शिष्य का सम्बन्ध तथा गुरु का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो रहा है।

तन्त्र में कुण्डलिनी साधना—कुण्डलिनी साधना तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। जैसे कि शक्ति (प्रकृति) की उपासना जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि सभी में स्वीकृत है, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की साधना भी स्वीकृत है। कुण्डलिनी क्या है, इसके विषय में वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि सर्प के आकार के रूप से मूलाधार से समन्वित कमल के तन्तु (डण्ठल) के समान शक्ति नामक कुण्डलिनी है। जैसे कमल का कन्द होता है, उसी मूल कन्द को कणाग्र से देख कर मुख द्वारा पूंछ को ग्रहण करके ब्रह्मरन्ध्र तक समाश्रित है। पद्मासन पर बैठा हुआ अपनी आत्मा में स्थित साधक गुरु द्वारा संकेत पाकर प्राणवायु को ऊर्ध्वगत करता हुआ कुम्भक प्राणायाम में आविष्ट मन होकर वायु के आघात वश से स्वाधिष्ठान गत अग्नि को जलाता हुआ, अग्नि की ज्वाला और वायु के आघात से सर्पराज (कुण्डलिनी) को जगाता है, उसके बाद पहले रुद्रग्रन्थि तोड़ता है, उसके बाद विष्णुग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थि को तोड़ कर षट्चक्रदल कमल को तोड़ता है और सहस्रदल कमल में शिव के साथ आह्लाद प्राप्त करता है। वही परावस्था कही जाती है। वही मोक्ष का कारण है।

'वामकेश्वर तन्त्र' में कुण्डलिनी का परिचय देते हुए कहा गया है कि—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभाऽऽशुभा।।
मूलकन्दं कणाग्रेण दष्ट्वा कमल कन्दवत् ।
मुखेन पृच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता।
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।।
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघाततपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ।।
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्यतः।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृति कारणम्।।
आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये विसतन्तुनिभा।
तत्र कुण्डलिनी शक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम्।। (लक्ष्मीधरा)

भगवती त्रिपुरा भी 'सहस्त्रवार' में परमशिव के पास जाकर विहार करती हैं—

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।

और भगवती कुण्डलिनी भी सहस्त्रार में पहुँचने के अनन्तर सारे प्रपञ्च को अमृत से नहलाकर 'मूलाधार चक्र' के कुलकुण्ड मे आकर सो जाती हैं—

'स्वामात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।

कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया—देवी कुण्डलिनी हुङ्कारपूर्वक जाग्रत होती है और षट्चक्र एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहस्त्रार में अपने प्रियतम शिव के पास पहुँचकर विहार करती हैं—

'हूङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो।
ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्।।
ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धिस्वभावो।
भित्वा तल्लिंगरूपं पवनदहनयोरा क्रमेणैव गुप्तम्।।
"भित्वालिङ्गत्रयं तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे।
सा देवी शुद्धसत्वा तडिदिव विलसतन्तुरूपस्वरूपा।।
ब्रह्माख्यायाः शिराया सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तनु।
मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मताल लक्षणेन।।"
"नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज्जीवेन सार्द्धसुधी-
र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।
ध्यायेदिष्टफलप्रदां भवगतीं चैतन्यरूपां परां,
योगीन्द्रो गुरुपादपद्मयुगलाम्वी समाधौ यतः।।"
"लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली।
नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी।।
तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं।
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम्।।

अर्थात् तन्त्रशास्त्र में मूलाधार में सर्प के समान कुण्डली मार कर स्थित है, इसे ही शक्ति कुण्डलिनी कहते हैं। यह कुण्डलिनी जब जगती है, तब हुंकार की ध्वनि होती है और षट्चक्र और तीन ग्रन्थियों को तोड़ती हुई सहस्त्रदल कमल में अपने प्रियतम शिव के साथ पहुँच कर विहार करती है। इसे कोई सामान्य मनुष्य नहीं जगा सकता। इसे यम-नियम, आसनादि का अभ्यास करने वाला

व्यक्ति ही जगा सकता है, जिसने श्रीनाथ के मुख से क्रमानुसार अभ्यास किया हो। ऐसा शुद्ध बुद्धि स्वभाव वाला व्यक्ति ब्रह्मद्वार के मध्य में पवनदहन योग के आक्रमण से प्रतप्त तथा स्वयम्भू लिंग को घेर कर आधी त्रिवली के आकार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जो कि हुंकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयंभू लिंग के छिद्र से निकाल कर उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचाता है। पहले कुण्डलिनी अनाहत चक्र स्थित वाण लिंग का, फिर आज्ञाचक्र स्थित आज्ञा लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाड़ी की सहायता से सहस्रदल कमल में प्रवेश करती है और फिर वहाँ परमानन्दमय शिव में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह योगी का काम है कि वह अपने जीवभाव के साथ कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठा कर बिन्दु शिव के साथ समरस कर दे, वहाँ सहस्रार के कुण्डलिनी लाक्षावर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है। उसके बाद परमानन्द की अनुभूति को मन में रखते हुए पुनः मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी जागरण योग। इसकी सिद्धि योगी को जीवन्मुक्त बनाती है तथा योगी साक्षात् शिवरूप हो जाता है।

नाद विन्दु और कला

नाद—प्रणव की 12 कलाओं में विन्दु और नाद की स्थित है। आगम और तन्त्रासार की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी अलग-अलग व्याख्यायें हैं। सबने अपने-अपने तरह से नाद की व्याख्या की है। नादकारिका में नाद को मालिनी महामाया समना अनाहत बिन्दु अघोष वाणी और ब्रह्म कुण्डलिनी वताया है। प्राणवायु के द्वारा निकाली गयी ध्वनि को भी नाद कहा जाता है। हकारस्तु स्मृतः प्राणः स्वप्रवृत्तो हलाकृतिः स्वच्छन्द तन्त्र (4.257) के इस कथन के अनुसार स्वाभाविक रूप लगातार हलाकृति प्राण को ही हकार कहा गया है। यही हंसोच्चार कहलाता है। इसी का अनाहत ध्वनि अथवा नादभट्टारक भी कहा गया है। यह नादभट्टारक शब्द ब्रह्म का ही प्रतीक है। यह दश प्रकार का होता है। तंत्रालोक (5.59) में दश प्रकार का राव नाद बताया गया है। स्वच्छन्द तन्त्र के 11.17 में महाशब्द के नाम से नवम नाद भी माना गया है। दस प्रकार के नाद में धारणा ध्यान और समाधि का अभ्यास करने पर शब्दब्रह्म के स्वरूप को समझ लेता है, वह जान लेता है कि शब्द ब्रह्म से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों का विकास होता है।

यह नाद तत्त्व परा और पश्यन्ती के क्रम से विकसित होता हुआ मध्यमा में आकर योगाभ्यास द्वारा श्रवणेन्द्रिय के अन्तर्मुख होने पर सुनाई पड़ता है। जब

यह अन्तर्मुखता की ओर बढ़ता है, तब इसका सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अभ्यास करते-करते और फिर अन्वेषण करके योगी इसके रहस्य को भली-भाँति जान लेता है और फिर वह निज्ञान हो जाता है। शव्दब्रह्म के स्वरूप को अच्छी तरह जान लेने पर साधक अनायास परं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् लगातार नदन करती हुई अनाहत ध्वनि में चित्त को एकाग्र कर लेने पर योगी का परमाकाशस्त्ररूप चिदाकाशमय और प्रकाशात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

नाद बिन्दु का प्रथम परिमाण है। विन्दु इच्छा शक्ति है, जो प्रकाश प्रधान है। नाद उसी का विमर्श प्रधान स्वरूप है। सदाशिव दशा नाद का बाहरी स्फोट है। चित्तवृत्ति के ज्ञान में भी नाद व्याप्त है; क्योंकि वहाँ भी वस्तु विमर्शन होता है। शुद्ध विमर्श नाद का सूक्ष्मतर स्वरूप है इसका आकार "अहम्" है। बुद्धि का व्यापार यह नाद विषयोन्मुख विमर्श है तथा सदाशिव को बताने वाला है शैवसिद्यन्त में ज्ञान आत्मा के साथ मिला हुआ रहने पर भी यह नाद की उपाधि है आत्मा अनन्त है, तो नाद भी अनन्त है। सभी प्रकार के ज्ञान बुद्धि में आकर नाद के रूप में व्यवहार्य है। कथन का आशय है कि ज्ञान शक्ति की अतिसूक्ष्म स्थिति ही नादवृत्ति है। सविकल्पक ज्ञान में यह मायावृत्ति के साथ सम्बद्ध रहती है। ज्ञान को यदि बुद्धि का व्यापार माल लें तो शुद्ध भुवनों में स्थित अनन्तादि में सविकल्पकज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि माया के ऊपर बुद्धि तत्त्व का कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये नादतत्त्व को स्वीकारना ही पड़ेगा। बुद्धि से निश्चय किया हुआ ज्ञान किसी इन्द्रिय से ही ग्राह्य होगा। इसी प्रकार अन्दरूनी विचार से किसी विषय का निश्चय होता है तथा अन्तः विन्दु रूप आन्तरिक सम्यक् कथन का कारण नाद है। वह नाद आन्तरिक सम्यक् कथन को उत्पन्न करता है। इसी नाद के कारण बुद्धि बाह्य विषय के प्रतिबिम्ब का निश्चय करती है। बाहर प्रकट होने वला शब्द आन्तरिक सम्यक् कथन का बाहरी आकार वास्तव में नाद को बुद्धि के सामने रखता है। बुद्धि द्वारा निश्चय किया हुआ विषय प्रकट वर्णों द्वारा प्रकट होता है। अतः नाद शक्तितत्त्व का नामान्तर है। इसीलिये इसे शैवसिद्धान्त में द्वितीय तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

बिन्दु—सत्त्वगुण की वह अवस्था ही बिन्दु है, जिसे वैष्णव विशुद्ध सत्त्व तथा व्यास प्रकृष्ट सत्त्व कहते हैं। यह तमोगुण और रजोगुण से सदा के लिये विमुक्त अवस्था है। तान्त्रिक गण इसे विन्दु कहते हैं।

शैवसिद्धान्त में छत्तीस तत्त्वों के अन्तर्गत बिन्दु को पहला स्थान दिया गया है। रत्नत्रय श्लोक 71 में इसे शिव कहा गया है। शक्ति सदाशिव, ईश्वर

तथा शुद्ध विद्या इन चार शुद्ध तत्त्वों के शरीर बिन्दु तत्त्व से ही बने हैं। अर्थात् इनका शरीर बैनदव कहा जाता है। तत्त्व प्रकाश (पृ. 27) के अनुसार बिन्दु को ही परनाद कुण्डलिनी ब्रह्म आदि कहा गया है। भुवनेश्वरों की आराधना करने पर तथा दीक्षित साधकों की अपनी ज्ञान और क्रियाशक्ति से यह प्रकट होता है। यह परमात्म की शक्ति है। हवा से जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार बिन्दु में लहरें उठती हैं। नाद और ज्योति ही इसकी लहरें हैं। मंत्रों मंत्रेश्वर और मंत्रमहेश्वरों का शरीर बैन्दव होता है। बिन्दु का अगला रूप परबिन्दु है। परमकारण व्योमाकार शिवतत्त्व में सभी शब्दों का कारण अतिसूक्ष्म नाद अप्रकटरूप में विद्यमान है। इसी को परबिन्दु कहा जाता है। शक्ति तत्त्व के आविर्भूत काल में सभी शब्द समुदाय के केन्द्र में स्थित स्फोट रूपी तत्त्व यही है। आगम और तन्त्र के महान् आचार्य भास्करराय के अनुसार प्रलयावस्था में ब्रह्म घनीभूत दशा में अवस्थित रहता है। उस समय आगे की सृष्टि की प्रत्याशा में माया शक्ति भी प्रसुप्तावस्था में रहती है। समयानुसार जब ब्रह्म में सृष्टि की विशेष इच्छा होती है, उस समय माया शक्ति जग जाती है, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है; क्योंकि इस दशा में यद्यपि कर्मों का परिपाक हो जाता है और उसकी शक्ति भी जग जाती है; किन्तु वह अभी अप्रकट ही रहती है। इसी को कारण बिन्दु कहा जाता है; क्योंकि यह सृष्टि रूपी वृक्ष का बीज है। जैसे कन्द से अंकुर फूट कर ऊपर आता है, उसी तरह इस कारण बिन्दु के विकास से आगे की सृष्टि चलती है। प्रपञ्चसार (1.41) के अनुसार यह बिन्दु शब्द कारण बिन्दु का बोधक है।

कारण बिन्दु से कार्य बिन्दु नाद और बीज की उत्पत्ति होती है, जो पदार्थों पर, सूक्ष्म और स्थूल दशा के प्रतीक है। ये क्रमशः चित्स्वरूप (केवल चैतन्य रूप) चिद् अचिद् मिला हुआ रूप और फिर अचित् स्वरूप (साकार) होते हैं। ये ही कारण बिन्दु आदिकालीन चार तत्त्व अधिदैवत् अवस्था में अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् के रूप में शान्ता, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्ति के रूप में तथा अम्बिका, इच्छा ज्ञान, क्रिया शक्ति के रूप में विकसित होते हैं। अधिभूत अवस्था में से कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, ओड्याण पीठ के रूप में होते हैं तथा अध्यात्म पक्ष में कारण, बिन्दु, शक्ति, पिण्ड, कुण्डली जैसे शब्दों से पुकारे जाते हैं। जो मूलाधार में स्थित होते हैं।

तन्त्र साहित्य का कलेवर—तन्त्र साहित्य विशाल साहित्य है। शाक्तों ने भारत एवं एशिया को तीन भागों में विभाजित कर क्रान्ताओं के रूप में तन्त्रों के 64 भेद किये हैं।

1. भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त और साधना ग्रन्थ में इनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जहाँ ये विष्णुक्रान्ता, जिसमें सिद्धीश्वर कालीतन्त्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव, नील केत्कारी और श्रीक्रम और सिद्धियामलादि 64 तन्त्र हैं। 2. रथाक्रान्त में मत्स्य सूत शक्तिसंगम, षडाम्नाय, योग स्वरोदय, स्वरोदय, ज्ञानभैरव, कालभैरव आदि 64 तन्त्र हैं तथा अश्वक्रान्ता में भूतशुद्धि, क्रियासार, तत्त्वचिन्तामणि, बृहत्कंकालिनी क्रियासार, वर्णसार, चूड़ामणि, महायोगिनी आदि 64 तन्त्र हैं।

चतुश्शती में 64 तन्त्रों का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है—

शुभागम के ग्रन्थ हैं—1. वशिष्ठ संहिता, 2. सनक संहिता, 3. शुक्र संहिता, 4. सनन्दन संहिता, 5. सनत्कुमार संहिता।

28. ग्रन्थ आगम के हैं, जिनका विवरण भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त एवं साधना में इस प्रकार दिया गया है—

1. कामिक, 2. योगज, 3. कारण, 4. प्रसृतागम, 5. अजितागम, 6. दीप्तागम, 7. अंशुमानागम, 8. सुप्रभेदागम, 9. विजयागम, 10. निःश्वासागम, 11. स्वायंभुवागम, 12. अनलागम, 13. वीरागम, 14. रौरवागम, 15. मुकुटागम, 16. विमलागम, 17. चन्द्रज्ञानागम, 18. बिम्बागम, 19. प्रोद्गीत, 20. ललितागम, 21. सिद्धागम, 22. सन्तानागम, 23. किरणागम, 24. वातुलागम, 25. सूक्ष्म, 26. सहस्र, 27. सर्वोत्तर, 28. परमेश्वर।

तंत्र एवं पुराणों में विज्ञान—वित्तरनित्ज महोदय तथा परमश्रेद्धय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुराण एवं तन्त्र साहित्य को पाखण्ड घोषित किया, इसमें कुछ तो सत्यता है; परन्तु ऐसा भी नही है कि समस्त पुराण या तन्त्रसाहित्य निन्दनीय हो। पुराण हमारे इतिहास हैं। उनमें सब विद्यायें हैं, उनमें वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। आवश्यकता है, उन्हें समझने की जैसे कि मार्कण्डेय पुराण स्थित दुर्गासप्तशती का नित्य लोग पाठ करते हैं। शक्ति पीठों में जाकर कोई स्वयं करता है, तो कोई पण्डित द्वारा कराता है; परन्तु मां के रहस्य को जानने का प्रयास नहीं किया जाता। मेरे पिताश्री ने एक लेख द्वारा यह सिद्ध किया है कि दुर्गा सप्तशती में मां दुर्गा के जो नौ रूप हैं, वे सृष्टि रचना के प्रतीक है, उनका वह लेख कई पत्रिकाओं में छपा तथा 2016 के प्राच्य विद्या सम्मेलन में भी पढ़ा गया। उनके अनुसार मां दुर्गा का प्रथम रूप शैलपुत्री है। इसका अर्थ है—सबसे पहले यह प्रकृति जिसे दुर्गा कहो, चण्डी कहो, काली कहो इसके अनेक नाम हैं। तन्त्र में इसे शक्ति कहा गया है। अतः ये जीवन तत्त्व है। अतः पहले यह जीवन तत्त्व शैल (पर्वत) पर पैदा हुआ। अर्थात् प्रलय के बाद जब सूर्य की आग कुछ

कम हुई तो जलतत्त्व जिसे जीवन कहा जाता है, ऊँचे पर्वतों पर वर्फ के रूप में पैदा हुआ; क्योंकि पर्वत पर सूर्य की किरणों के विखर जाने पर वहाँ का तापमान वहुत कम हो जाता है। अतः वहाँ जलतत्त्व बर्फ के रूप में पैदा होता है। इसीलिये इन्हें मां प्रकृति को शैलपुत्री कहा गया। प्रकृति (मां दुर्गा) का दूसरा रूप है, ब्रह्म चारिणी अतः इसकी व्युत्पत्ति की गयी तो 'वृंह' वर्धन धातु में 'मनिप्' प्रत्यय से 'ब्रह्म' शव्द बना, जिसका अर्थ हुआ वढ़ने वाला तथा चारिणी 'चर्' धातु 'घञ्' प्रत्यय से चार शब्द बना; फिर 'णिनि' प्रत्यय से 'चारिन्' बना। स्त्रीलिङ्ग 'ङीप्' लगाने पर चारिणी बना, जिसका अर्थ है—चलाने वाली। तव ब्रह्मचारिणी का अर्थ हुआ—वढ़े हुए को चलाने वाली। स्वाभाविक है कि बर्फ बढ़ेगी, तव चलेगी। अतः पर्वतस्थ हिम बढ़कर और पिघलकर चलने लगा, तब तीसरा है 'चन्द्रघण्टा' अतः चन्द्र का अर्थ है—चन्द्रमा और पानी। घण्टा का अर्थ है—समूह। अतः चन्द्रघण्टा का अर्थ हुआ—जल का समूह। अतः उस बर्फ के पिघल कर वहने से जल समूह (समुद्र) वन गये। उसके बाद चौथा रूप है—कूष्माण्डा। कूष्माण्डा शव्द कु+ऊष्मा+अण्ड का सन्धि रूप है। 'कु' का अर्थ 'कम', ऊष्मा का अर्थ—गर्मी, अण्ड का अर्थ है—व्रह्माण्ड; क्योंकि प्रलयकालीन उग्र सूर्य जब करोड़ों वर्ष के बाद ठण्डे हुए और जब कम ऊष्मा वाले हुए तो स्वाभाविक है जल (समुद्र का जल) वाष्प रूप में बदलेगा तथा जब वाष्प बनेगा तो फिर वह वाष्प ठण्ड पाकर जल रूप में परिवर्तित होगी, तो फिर वादल बनेंगे। अतः मां दुर्गा (प्रकृति) का पांचवा रूप है—स्कन्दमाता। जिसका अर्थ है—स्कन्द = बादल, माता = वनाने वाली। अतः यह प्रकृति वादल बनाने वाली बन गयी। जब वादल वनेंगे तो वरसेंगे ही तथा जब वरसेंगे तो सर्वत्र जल फैलेगा। अतः मा का छठा रूप है—कात्यायनी, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—क+तनु विस्तारे धातु में 'ष्यञ्' प्रत्यय लगा तो 'तनु' का अनुबन्धलोप होकर 'त्' शेष रहा और 'ष्यञ्' प्रत्यय का अनुवन्ध लोप होकर 'य' शेष रहा, तब हुआ क+त्+य। क्योंकि 'ष्यञ्' प्रत्यय ञित् है। इसमें 'ञ्' की इत्संज्ञा हुई है तथा जहाँ 'ञ्' की इत्संज्ञा होती है, वहाँ पर आदि वृद्धि का नियम है। अतः आदि वर्ण 'क' को 'का' होकर कात्य शव्द बना, फिर कात्य में 'फक्' प्रत्यय लगा और 'फक्' को आपन आदेश हुआ तो कात्यायन शव्द बना और स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' से कात्यायनी शव्द बना, जिसका अर्थ है—जल का विस्तार करने वाली। अतः जव बादल जल वर्षा करेंगे, तो जल का विस्तार होगा ही, जल फैलेगा ही। अतः मां प्रकृति का यह षष्ठ रूप कात्यायनी है। जब समस्त ब्रह्माण्ड मेघाच्छन्न होगा तो अन्धकार छा जायेगा। अतः

मां का सप्तम रूप कालरात्रि इस कालरात्रि का समय लाखों वर्ष का रहा होगा। तब चिकाल के बाद महागौरी मां का अष्टम रूप है जो अन्धकार पर विजय का प्रतीक है तथा नवम रूप सिद्धिदात्री रूप सृष्टिकार्य में सफलता का द्योतक है। इस प्रकार मां, दुर्गा, प्रकृति, महात्रिपुरेश्वरी (प्रकृति) द्वारा सृष्टि करने की प्रक्रिया मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट घोषित है। कुछ लोग इसे यदि मनगणन्त कहें तो बतायें कि इसमें कैसे कल्पना है। ऐसी कथायें पुराणों में और तन्त्रसाहित्य में अनेकों हैं, जो सब वैज्ञानिक हैं।

उदाहरण के लिये मधुकैटभ का विष्णु के साथ पांच हजार दिव्य वर्षों तक युद्ध हुआ। तब यह संख्या 66612500 मानव वर्ष होता है। अतः ऐसा युद्ध किसी मानव रूप विष्णु और मधुकैटभ रूप राक्षस में तो सम्भव नहीं है अतः यह मानना ही होगा कि विष्णु कोई मनुष्य नहीं; अपितु जीवनदायक प्रकृति का रूप रहा होगा। अथवा विष्णु सत्त्व गुण का प्रतीक है, जिसे ऑक्सीजन भी कहा जा सकता है तथा मधुकैटभ तमोगुण का प्रतीक है तथा सत्त्वगुण के उद्रेक को रोकने के लिये तमोगुण प्रवृत्त रहा। तब 66 करोड़ वर्ष बाद तमोगुण पर सत्त्वगुण की विजय हुई और फिर विष्णु सत्त्व द्वारा सृष्टि सम्पन्न हुआ।

अतः मेरे कहने का आशय है कि पुराण और तन्त्र साहित्य पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। आवश्यकता उस पर गहन अध्ययन की है। यदि वैज्ञानिक इस पर अनुसन्धान करें तो अवश्य संसार के कल्याणार्थ कुछ तथ्य प्राप्त कर सकेंगे।

अतः यह मानना होगा की पुराणों में तन्त्रसाहित्य है, वह बहुत ही रहस्यात्मक है तथा तन्त्रसाहित्य प्रायः अधिकांश पुराणों और हमारे विशालकाय ग्रन्थ महाभारत में भी है। अतः पुराणों और तन्त्र साहित्य को पाखण्डियों का ग्रन्थ कहना उचित नहीं है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का सरस्वती भवन पुस्तकालय हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का भण्डार है। इस पुस्तकालय में असंख्य पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें कुछ पूर्ण और कुछ अपूर्ण हैं। इन पाण्डुलिपियों का 80 प्रतिशत भाग सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है तथा अभी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ हैं, जो प्रकाशित होकर संसार का कल्याण कर सकती हैं।

इसी पुस्तकालय से पण्डित गोपीनाथ कविराज महोदय ने पांच तन्त्रसंङ्ग्रह सम्पादित कर प्रकाशित करवाये। उसी क्रम में तन्त्रसंङ्ग्रह का पांचवाँ भाग भी प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन पण्डित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी, अध्यक्ष योगतन्त्र विभाग की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

इस सङ्ग्रह में सात तन्त्रग्रन्थ हैं—1. सर्वविजयी तन्त्र, 2. गुप्तसाधन तन्त्र, 3. माया तन्त्र, 4. षडाम्नाय तन्त्र, 5. गायत्री तन्त्र, 6. चीनाचार तन्त्र, 7. भूतशुद्धि तन्त्र।

इन विरल प्राप्य दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन से तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों का उद्धार, संरक्षण, प्रचार तो हुआ ही, साथ ही वैदिक-पौराणिक-तान्त्रिक विद्या का अध्ययन करने वालों और शोधार्थियों की वैदिक-पौराणिक विषयों के साथ तान्त्रिक विषयों के तुलनात्मक अध्ययन में प्रवृत्ति होगी। ऐसे अनेक विषय हैं, जिनका वैदिक-पौराणिक वाङ्मय में नाम भी नहीं है। उनके केवल नाम मात्र साम्य हैं। उनके अर्थ करने की क्रिया में महान् भेद ग्रन्थ को देखने से जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये गायत्री मन्त्र को तो सभी जानते हैं तथा उसका नित्य जाप सन्ध्या तथा हवन में वैदिक धर्मानुयायी (आर्यसमाजी) तथा सनातन धर्मानुयायी सभी नित्य करते हैं।

गायत्री वेदमाता है, ऐसा वैदिक और पौराणिक वाङ्मय में गायत्री के विषय में बहुत चर्चायें, व्याख्यायें और विशेष व्याख्यायें हैं। तथापि तन्त्रग्रन्थों में गायत्री विषय विचारों के अवलोकन से आँखें खुल जाती हैं। एक नवीन दृष्टि प्राप्त होती है तथा मायातन्त्र, षडाम्नाय तन्त्र में सांख्य और वेदान्त का संगम मन को प्रसन्न कर देता है। भूतशुद्धितन्त्र जो योगतन्त्र क्रिया का संक्षिप्त रूप बताया है, वह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार ही चीनाचार तन्त्र के माध्यम से पूजा आचार के विज्ञान के साथ-साथ भौगोलिकी और ऐतिहासिकी दृष्टि से समुद्घाटित होती है।

यह सब कुछ तो है ही माननीय व्रजवल्लभ द्विवेदी महाभाग द्वारा इन ग्रन्थों का लोकार्पण तो किया गया, परन्तु इनका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था, जिससे सामान्य जन तक इनकी पहुँच नहीं थी, साथ ही संस्कृत विषयस्थ योगतन्त्र के अनुसन्धानों को कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था।

अतः इनका हिन्दी अनुवाद आवश्यक था, ताकि ये ग्रन्थ सामान्य जन तक पहुँच सकें। इनमें गायत्री तन्त्र, गुप्तसाधन तन्त्र का अनुवाद हो चुका है। शेष पांच ग्रन्थों का अनुवाद कराने के लिये माननीय व्रजमोहन दास जी ने मेरे पिता श्री से कहा तो उन्होंने 'सर्वविजयी तन्त्र' का अनुवाद डॉ. सुभाष कुमार, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली के द्वारा करवाया तथा अन्य चार ग्रन्थों का अनुवाद मुझे करने को कहा। मेरे पिता श्री को भले ही समयाभाव था, तथापि उन्होंने मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित किया। सम्प्रति लगभग दो वर्ष में ये एक अत्यन्त

क्लिष्ट हस्तलिखित पाण्डुलिपि के सम्पादन एवम् अनुवाद में व्यस्त थे, जिसका नाम है—**रुद्रयामलतन्त्र** (धातु खण्ड)। यह पाण्डुलिपि ऐसी लिपि में थी कि उसको समझना सामान्य जन का कार्य नहीं; जिसकी अशुद्धियाँ सुधारकर हिन्दी अनुवाद करने के कारण वे मुझे समय नहीं दे सके, तथापि अपने अथक परिश्रम से मैं इन चारों तन्त्र ग्रन्थों का अनुवाद करने में सफल हुआ। कहीं-कहीं पिता श्री की सहायता लेनी पड़ी; क्योंकि बिना गुरु के कोई भी कार्य सम्भव नहीं। इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने में मैंने अनेक तन्त्रग्रन्थों तथा कोशग्रन्थों की सहायता ली है, उन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ। षडाम्नाय तन्त्र का अनुवाद मैं कर चुका हूँ तथा शेष मायातन्त्र, चीनाचार तन्त्र और भूतशुद्धि तन्त्र का अनुवाद प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

माया तन्त्र—यह तन्त्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तन्त्र है। इसमें माया प्रकृति को माना गया है, अतः यह माया प्रकृति ही सब कुछ है तथा इसी में आत्मशक्ति है। यह कोई अलग तत्त्व नहीं है, ऐसा बताया गया है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति की कथा बतायी गयी है। प्रारम्भ में समस्त विश्व में एक सागर के अन्तर्गत वटवृक्ष पर स्थित नारायण और महामाया को मार्कण्डेय मुनि द्वारा सृष्टि रचना के लिये निवेदन किया गया, तब भगवान् नारायण के नाभि कमल से ब्रह्म की उत्पत्ति, फिर ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना करना वर्णित है। तब ब्रह्मा द्वारा की गयी मानसी और योनिजा सृष्टि का वर्णन है। उसके बाद नारायण द्वारा उपदिष्ट माया मन्त्र, माया की आराधना विधि, माया के अनेकों रूप, महामाया विनियोग और ध्यानादिक वर्णित है। उसके बाद दुर्गा का अनुविनियोग ध्यान आदि वहाँ भूतशुद्धितन्त्र में कहे गये के अनुसार क्रम से बताये हैं।

इसके बाद दुर्गायन्त्र, स्तव कवच आदि का वर्णन है। फिर प्रभा आदि नव शक्तियाँ बतायी हैं, फिर यन्त्रकवच आदि की फलश्रुति है और मन्त्रों की पुरश्चर्या विधि, मालाविधान और सूत्रविधान वर्णित है। फिर दुर्गा के नाम से फल प्राप्ति, मन्त्रों की पुरश्चर्या विधि, माला विधान और सूत्रविधान का वर्णन है। तदनन्तर सुषुम्णा नाड़ी के मध्य स्थित सूर्यपर्व और चन्द्रपर्व तथा मन्त्रद्वय समुद्धार का वर्णन है। ग्रहण के समय में सब तीर्थों का जल सामान्य जल में बदल जाता है। उस काल में मन्त्रसिद्धि तथा किसी भी देवता की सिद्धि सरल बतायी है।

कलियुग में केवल तीन अक्षरों तथा एक अक्षर वाली विद्या समाराधन के लिये देय है। यह बताते हुए विश्वसारोक्त कुलपूजा विधान से जप आदि के द्वारा वाक्पतित्व लाभ बताया है। अर्थात् उक्त कुलपूजा विधान से मनुष्य वाणी का

स्वामी वन जाता है। अर्थात् वह बहुत ही अच्छा वक्ता वन जाता है। इस प्रसंग में अनेकों प्रयोगों का वर्णन किया है।

शान्ति, पुष्टि आदि में कुण्डभेद से हवनविधान, कुण्ड की माप आदि का वर्णन, विशिष्ट पुरश्चर्या विधान, मन्त्रसिद्धि निरूपण और योगसाधन तथा त्रिविध भाव निरूपण वर्णित हैं। उसके बाद काली, दुर्गा और तारिणी आदि सब देवियाँ एक ही हैं, केवल नाम मात्र का भेद है, स्वरूप भेद नहीं है यह बताया है। बाद में कुलीन द्वारा कुलाचार पद्धति से लता साधन अर्थात् दुर्गा-काली तारिणी की सिद्धि करनी चाहिये तथा वह सिद्धि कौलाचार में अपनी अथवा दूसरे की स्त्री पर ही हो सकती है, यह सब बताते हुए समाज में स्त्री के महत्त्व को समझाया है। अन्त में यह समझाया है कि इस कौलाचार की निन्दा करना स्त्रियों की निन्दा करना है। अतः स्त्रियों का अप्रिय (अहित) करने वाले तथा उनकी निन्दा करने वाले के सव फल निष्फल हो जाते हैं। अन्त में भुवनेश्वरी कवच विधान और उसका फल बताया है। इस प्रकार यह तन्त्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तन्त्र है। इसकी अन्य विशेषतायें इस प्रकार हैं—

मायातन्त्र की विशेषता

माया तन्त्र में सृष्टि विज्ञान—इस ग्रन्थ के एक श्लोक में वताया गया है कि जव सर्वत्र जल ही जल था, तव उस ब्रह्म, परमेश्वर, अल्लाह अथवा गौड ने माया अर्थात् प्रकृति को याद किया; क्योंकि यह प्रकृति ही तो जड़ चेतन रूप में सर्वत्र विद्यमान है। इसी में ब्रह्म व्याप्त है। इस प्रकृति को ही कोई माया, कोई पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ललिता, त्रिपुरसुन्दरी, तारा आदि कहता है। यह समस्त दृश्यमान जगत् प्रकृति का ही रूप है। अतः सृष्टि करने के लिये उस ब्रह्म ने इस माया का स्मरण किया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ऐसा वे पहले से सोच चुके थे। तब उसके बाद उस माया (प्रकृति) देवी ने वटदल बनकर जल मध्य स्थित उन परमेश्वर (नारायण) को अपनी लीला से धारण कर लिया।

तदा वटदलं भूत्वा तोयान्तः समवस्थितम्।
ततो नारायणं देवं सा दधार स्वलीलया।।

—मायातन्त्र, प्रथम पटल, श्लोक सं 4

उपरोक्त श्लोक में अत्यन्त मार्मिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ वट दल (वट वृक्ष की शाखायें और पत्तों) को कहा जाता है। वट वृक्ष जल में वनस्पति की उत्पत्ति का प्रतीक है। अतः यहाँ वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया गया है, जैसा कि वैज्ञानिकों का कहना है कि पहले जल ही जल था, फिर इसमें

काई पैदा हुई, उसमें एक कीट पैदा हुआ, जिसे बिना हड्डी पसली का अमीवा कहा जाता है, फिर उसी से धीरे-धीरे मत्स्यादि के क्रम से मनुष्य रूप बना। अर्थात् अमीवा नामक बिना हड्डी-पसली (Without cell) के जीव से अनेकों प्रकार से जीवों में बदलते हुए मत्स्य रूप आया जिसे मत्स्यावतार कहा जाता है। मत्स्य के बाद अनेकों जल जीवों के रूप में आते हुए जल और थल पर विचरण करने वाले कछुआ के रूप में जीवोत्पत्ति हुई, जिसे कच्छप अवतार कहा गया है। बाद में अनेकों जीवों के रूप में विकसित होता हुआ वराह (सुअर) रूप हुआ, तब बन्दर आदि के बाद मनुष्य रूप में जीव का विकास हुआ। इस प्रकार 84 लाख योनियों के रूप में घूमते हुए यह जीव मानव रूप में आया। यह हमारा पौराणिक जीव विकास है, जो डारविन महोदय के विकासवाद के सिद्धान्त से पूर्णतः मेल खाता है। विज्ञान ने जिसे आज सिद्ध किया है, यह भारतीय ग्रन्थों में बहुत पहले ही बताया जा चुका है।

यह वैज्ञानिक तथ्य है। कहीं-कहीं वट वृक्ष के स्थान पर कमल कहा गया है। जल से कमल, कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से संसार, ऐसा तो वेदादि शास्त्रों में बहुत पहले से कहा जाता रहा है।

माया ने नारायण को अपनी लीला से धारण कर लिया। इस कथन में गूढ़ वैज्ञानिक रहस्य भरा पड़ा है

माया तन्त्र में एकेश्वरवाद—हिन्दू धर्म में सर्वत्र एक ईश्वर की कल्पना परिलक्षित है। फिर चाहे वह शक्ति के रूप में हो, प्रकृति के रूप में अथवा ब्रह्म ईश्वर के रूप में हो। अनेकेश्वरवाद हिन्दूधर्म का एक भ्रामक रूप है। आश्चर्य तो इस बात का है कि हिन्दूओं ने गम्भीरतापूर्वक ग्रन्थों का अध्ययन ही नहीं किया है। सभी ग्रन्थों, पुराणादि में कहीं न कहीं किसी देव द्वारा किसी देव की उपासना में यह अवश्य आया होगा कि आप ही ब्रह्मा है, आप ही विष्णु हैं, आप ही शंकर है; तब तो स्पष्ट है कि ईश्वर या शक्ति एक है। उसे कोई अल्लाह कहता है, कोई गॉड कहता है या कोई ईश्वर कहता है।

ब्रह्माण्ड पुराण की भूमिका में लेखक प्रोफेसर डॉ. दलवीर सिंह चौहान ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की है। यहाँ इस ग्रन्थ में भी स्पष्ट कहा गया है कि—

यह जो चेतन शक्ति है, वही माया है, उसे ही दुर्गा कहा जाता है। वही जीव को तारने वाली है। वही बगलामुखी है तथा वह माया ही अन्नपूर्णा है और गृहस्थ पुरुषों की कल्पशाखाओं वाली है अर्थात् गृहस्थ जीवन की अनेकों

शाखाओं वाली अर्थात् पुत्र-पुत्री- पोते-पोती नाती-नतिनी आदि हजारों शाखाओं को पैदा करने वाली है।

यह माया देवी (प्रकृति) ही सब प्रकार के भोग विलासों को देने वाली है और मोक्ष को भी देने वाली है। उसी कारण से यह पूर्णा कही जाती है। यह सगुणों की माया है और निर्गुणों की चित् शक्ति है, जिसे आत्मा कहा जाता है। अर्थात् यही शरीरों के रूप में दिखाई देने वाली देवी है तथा उन शरीरों में आत्मा रूप वाली है। अर्थात् साकार (सगुण) रूप से दृश्यमान शरीर भी वही है और उन शरीरों में विद्यमान निराकार निर्गुण (आत्मा) भी वही है। अतः सगुणों की वह माया है और निर्गुणों की चिदात्मिका (चैतन्य रूप आत्मा है) और दृश्यमान शरीर और उसमें स्थित आत्मा जो निर्गुण है, वह वही है।

या दुर्गा सा महाकाली तारिणी बगलामुखी।
अन्नपूर्णा च सा माया गृहिणां कल्पशाखिनी।।
भोगदा मोक्षदा देवी तस्मात् पूर्णेति चक्ष्यते।
माया गुणवता देवी निर्गुणानां चिदात्मिका।।

—मायातन्त्र, द्वितीय पटल, श्लोक सं. 4-5

इससे तो स्पष्ट हो जाता है कि जीव (आत्म) और प्रकृति दोनों एक ही तत्त्व हैं। इस शरीर मे जीव कोई अलग तत्त्व नहीं। जैस कि शाक्तवादी (वाममार्गी) मानते हैं। वास्तविकता भी है यदि जीव तत्त्व अलग है, तो मृत शरीर में कीड़े कैसे पड़ जाते हैं। उसमें जड़ में जीव कहाँ से आ गया। खैर विषय वहुत लम्बा है अतः विषय विस्तारभय से लेख्य नहीं।

इसके साथ ही इस तन्त्र में 'माया' (प्रकृति) के स्वरूप का बहुत मार्मिक वर्णन किया है। यह तो अध्ययन से ही स्पष्ट होगा।

ॐ का वैज्ञानिक रूप—यह मानने के लिये विवश होना ही पड़ेगा कि 'ॐ' प्रणव उस शक्ति का नाम है, जो इस समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यही एकाक्षरी विद्या है। इस तन्त्र में कहा गया है कि यह 'ॐ' प्रणव बीज मन्त्र है, जिसे यहाँ 'खान्त' कहा गया है। जिसका अर्थ है—आकाश के अन्त तक यह विद्या गूंज रही है अर्थात् यह ॐ समस्त आकाश में व्याप्त है—

ख़ के अन्त में जो वीज है, उसके समुद्धृत कर वाम कर्ण विभूषित चन्द्र बिन्दु से समायुक्त परम दुर्लभ बीज मन्त्र है।

यह वीज मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों को प्रदान करने

वाला है और साक्षात् महापाप को नष्ट करने वाला है। इस एक अक्षर वाली विद्या के समान तीनों लोकों में अन्य कोई विद्या नहीं है।

खान्तं बीजं समुद्धृत्य वामकर्णविभूषितम्।
इन्दुबिन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभम्।।
चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महापानकनाशनम्।
एकाक्षरी समा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिया।।

—(मायातन्त्र,द्वितीय पटल, श्लोक सं.17-18)

हो सकता है कि यह ॐ शब्द आकाश में गूँज रहा है। आकाश में प्रकाश है तथा प्रकाश में गति होती है तथा जहाँ गति होती है, वहाँ ध्वनि अवश्य ही होगी। अतः प्रकाश में ध्वनि है, परन्तु वह ध्वनि सामान्य कानों से ग्राह्य नहीं है। अतः ॐ की ध्वनि भी वहाँ अवश्य होगी। यह तो अनुसन्धान का विषय है।

श्रीयन्त्र महिमा—मायातन्त्र के तृतीय पटल में श्रीयन्त्र पूजन और कवच की महिमा वर्णित है। श्रीयन्त्र वास्तव में वैज्ञानिक है, जिसकी वैज्ञानिकता महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति में वर्णित है। अतः इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि श्रीयन्त्र पूजन अवश्य ही घर में सुख, समृद्धि का कारण होगा। अतः उस यन्त्र के कोणों में स्थित माताओं की पूजा करनी तथा यन्त्रस्थ भूपुर में वज्र आदि आयुधों से युक्त लोकनायकों की पूजा करनी चाहिए।

इस प्रकार सम्यक् प्रकार से पूजा करके स्तोत्र और कवच को पढ़ना चाहिए।

अङ्गावृतीः पुनः पूज्याः पत्रकोणेषु मातरः।
वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकनायकाः।।
एवं संपूज्य देवेशि! स्तोत्रं च कवचं पठेत्।
शृणु स्तोत्रं महेशानि! यदुक्तं परमेष्ठिना।

—(मायातन्त्र, तृतीय पटल, श्लोक सं. 11)

कवच से समस्त शरीर की रक्षा—कवच में शरीर के प्रत्येक अंग की रक्षा करने की बात कही गयी है। अतः क्योंकि यह शरीर ही तो प्रकृति है तथा प्रकृति से प्रकृति की रक्षा की, याचना व्यर्थ तो नहीं। कवच से होने वाले लाभ के विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

इस संयन्त्र और कवच को भोजपत्र पर लिखकर पुरुष अपने गले में या दक्षिण भुजा में धारण करे और नारी वामभुजा में धारण करे तो मनुष्य एक वर्ष

में अभीष्ट फल को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है तथा जो नारी एक पुत्र वाली होती है और जिसके पुत्र मर गये हों या जिसके एक ही पुत्र हैं, वह अनेकों पुत्रों को प्राप्त करेगी और जिसके पुत्र मर जाते हैं, उसके पुत्र जीवित रहेंगे। फिर नहीं मरेंगे। यही नहीं यदि बांझ स्त्री इसे अपनी वाम भुजा में धारण करेगी तो उसके भी पुत्र अवश्य उत्पन्न होंगे।

सयन्त्रं कवचं चैव लिखित्वा भूर्जपत्रके।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा।।
अभीष्टं लभते मर्त्यो वत्सरान्नात्र संशयः।
काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्।।
वह्वपत्या जीववत्सा बन्ध्या धृत्वा प्रसूयते।

—(मायातन्त्र, तृतीय पटल, श्लोक सं. 35-36)

दुर्गानामजाप फल—महान् आपत्ति में, महा कठिनाइयों में तथा आयु का नाश उपस्थित हो जाने पर अर्थात् मृत्यु के समय में, जातियों का नाश होने में, कुल का नाश होने मे और महानिगड के बन्धन में अर्थात् महाजाल में फंसने पर, कठिनाई से चिकित्सा होने वाले शरीर में, रोग पैदा हो जाने में, शत्रुओं द्वारा घेर लिए जाने पर, भाई बन्धुओं द्वारा प्रेम के छोड़ने में, दुर्गायुक्त नाम का जाप करना चाहिए। अतः वह नाम उपर्युक्त सभी प्रकार के दुःखों से प्रमुक्त कर देता है।

महापदि महादुर्गे आयुषो नाशमागते।
जातिध्वंसे कुलोच्छेदे महानिगडबन्धने।।
व्याधिशरीरसम्पाते दुश्चिकित्सामयेऽपि वा।
शत्रुभिः समनुप्राप्ते बन्धुभिस्त्यक्तसौहृदे।।
जपेद् दुर्गायुतं नाम ततस्तस्मात् प्रमुच्यते।
दुर्गेति मङ्गलं नाम यस्य चेतसि वर्तते।।
स मुक्तो देवि संसारात् स नम्यः सुरकैरपि।
दुर्गेति द्व्यक्षरं मन्त्रं जपतो नास्ति पातकम्।।

—(मायातन्त्र, पंचम पटल, श्लोक सं. 4-7)

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में जप एवं स्नान का महत्त्व—जप के बारे में कहा गया है कि चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय भारतवासी लोगों को उस मां दुर्गा की भक्ति से पूजा करनी चाहिए, यदि नहीं की जायेगी तो कभी भी सिद्धि नहीं होगी; क्योंकि चन्द्रग्रहण काल में स्नान-दान तथा श्राद्ध का फल करोड़ गुना हो जाना चाहिए।

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि! लोका भारतवासिनः।।
तत्पूजयेदेकभक्त्या नान्यथा तु कदाचन।
स्नानं दानं तथा श्राद्धमिन्दोः कोटिगुणं भवेत्।।

—(मायातन्त्र, षष्ठ पटल, श्लोक सं. 30-31)

क्योंकि उस समय सब तीर्थ और सामान्य जल अपने पद स्थान को छोड़कर सब तीर्थों के जल में मिल जाते हैं और सामान्य जल गङ्गा के जल के समान हो जाना चाहिए। अर्थात् जब सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण पड़ता है, उस समय सभी सामान्य जल गङ्गा के जल के समान हो जाते हैं। उस जल में स्नान मात्र से समस्त भारतवासी विष्णु के समान उसी क्षण मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्मपुर को चले जाने चाहिए।

तत्क्षणे सर्वतीर्थानि सामान्यमुदकं प्रिये।
यान्ति स्वपदमुत्सृज्य सर्वतीर्थोदकं ततः।।
सामान्यमुदकं तनु गङ्गातोयसमं भवेत्।
तत्क्षणे चञ्चलापाङ्गि तज्जलं स्नानमात्रतः।।

—(मायातन्त्र, सप्तम पटल, श्लोक सं.17-18)

इसमें अवश्य ही कुछ रहस्य है तथा यहाँ मायातन्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि यदि चतुर्दशी और पौर्णमासी सोमवार अथवा मंगलवार को हो जाये तो उसके समक्ष सूर्यग्रहण भी कोई महत्त्व नहीं रखता अर्थात् यदि सोमवार को चतुर्दशी मंगलवार को पूर्णिमा हो जाये तो चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहण से अधिक गुणकारी होता है।

चतुर्दशी पौर्णमासी सोममङ्गलसंयुता।
यदा भवति लोकेऽस्मिन् तदा सूर्यग्रहेण किम्।।

—(मायातन्त्र, सप्तम पटल, श्लोक सं.26)

उपर्युक्त कथन में अवश्य कुछ वैज्ञानिक रहस्य हो सकता है, उस समय चन्द्रमा की किरणों में कोई ऐसा औषधीय गुण हो कि उन किरणों के जल में पड़ने पर कुछ विशेष गुण उत्पन्न होता हो। इसलिए जब भी सोमवार की चतुर्दशी और मंगलवार की पूर्णिमा हो, तो अवश्य गङ्गास्नान करना चाहिए गङ्गा का ही नहीं, किसी भी नदी का स्नान लाभदायक होगा; क्योंकि उन दिनों खुले स्थान पर बहने वाली सभी नदियों में सूर्य की किरणें पड़ेंगी ही। अतः किसी भी नदी में स्नान लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

मायातन्त्र में नारी पूजा—मायातन्त्र में कुलपूजा वर्णित है; परन्तु वहाँ पर स्त्री को मां के रूप में कल्पित करना है। कहा गया है कि—

मां दुर्गा की मातृभाव से सम्यक् प्रकार से पूजा करके एकाग्रचित्त हो जप करना चाहिए। काली के समान अपराविद्या अर्थात् सरस्वती को पूजना चाहिए।

मातृभावेन सम्पूज्य जपेदेकाग्रमानसः।
कालीवदपरां विद्यां कालीवत् पूजयेत् सदा।।

—(मायातन्त्र, दशम पटल, श्लोक सं.6)

मायातन्त्र में नारी पूजा कौलाचार नारी पूजा स्वरूप ही है। इसमें स्त्री को देवी मानकर ही पूजा की जाती है। अतः यह स्त्री को सदा प्रसन्न रखने का प्रतीक हैं; क्यों कि कहा हैं कि—

यदि स्त्रियां अप्रिय करने वाली हों अर्थात् जिस घर में स्त्री प्रेम करने वाली न हों, अर्थात् पति से प्रेम न करती हो, वहाँ पर किसी देवता का न्यास रखना व्यर्थ हैं, वहाँ किसी देवता की पूजा व्यर्थ है, वहाँ किसी देवता का जप तथा स्तुति व्यर्थ है, उस घर में दक्षिणा देने के साथ हवन करना भी व्यर्थ है।

जो मनुष्य स्त्री अर्थात् पत्नी की निन्दा बुराई करता रहता है, उस व्यक्ति की बुद्धि, बल, यश, रूप, आयु, धन और पुत्र-पुत्री आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

वृथा न्यासो वृथा पूजा वृथा जपो वथा स्तुतिः।
वृथा सदक्षिणो होमो यद्यप्रियकरः स्त्रियाः।।
बुद्धिर्वलं यशो रूपमायुर्वित्तं सुतादयः।
तस्य नश्यन्ति सर्वाणि योषिन्निन्दापरस्य च।।

—(मायातन्त्र, एकादश पटल, श्लोक सं.34-35)

यहीं नहीं यहाँ तक कहा गया है कि संसार में सब कुछ छोड़ देना चाहिये; परन्तु स्त्री को नहीं छोड़ना चाहिये—

परिस्थितियों वश मनुष्य माता-पिता को छोड़ सकता है, उनका त्याग अच्छा है। शम्भु तथा हरि (विष्णु) का त्याग भी अच्छा है, यदि देवी का त्याग करना है, वह भी अच्छा है, परन्तु अपनी पत्नी कभी भी त्याज्य नहीं है अर्थात् पुरुष को भले ही माता-पिता, शिव, विष्णु, दुर्गा आदि का त्याग करना पड़े तो कर देना चाहिए, परन्तु अपनी पत्नी का त्याग नहीं करना चाहिए। संसार में मनुष्यों के मुख से यदि निन्दा होती है, वह अच्छी है, सभी ओर यश की हानि हो रही हो अर्थात् अपकीर्ति होती हो, वह अच्छी है। अगर प्राण भी त्यागने पड़ें तो अच्छा है, परन्तु स्त्रियों को कभी नाराज नहीं करना चाहिए।

मातापित्रोर्वरं त्यागस्त्याज्यौ शम्भुस्तथा हरिः।
वरं देवी परित्याज्या नैव त्याज्या स्वकामिनी।
वरं जनमुखान्निन्दा वरं वा गर्हितं यशः।।
वरं प्राणाः परित्याज्या न कुर्यादप्रियं स्त्रियाः।
न धाता नाच्युतः शम्भुर्न च वामा सनातनी।।
योषिदप्रियकर्तारं रक्षितुं च क्षमो भवेत्।
दुर्गार्चनरतो देवि महापातकसङ्कैः।
दोषैर्न लिप्यते देवि पद्मपत्रमिवाम्भसा।।

—(मायातन्त्र, एकादश पटल, श्लोक सं.36-38)

यह तन्त्र अत्यन्त ही क्लिष्ट है। इसके अनुवाद करने में मुझे अत्यन्त ही कठिनता हुई है, परन्तु अपने पिताश्री के सहयोग तथा श्री वामन आप्टे के कोशग्रन्थ तथा शब्दकौस्तुभ एवं वाचस्पत्यम् कोशग्रन्थों के सहयोग से इस ग्रन्थ के अनुवाद में सक्षम हुआ हूँ।

यह तन्त्र बहुत कठिन है। मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति द्वारा इसका सम्पादन और अनुवाद करना ज्ञान के महासागर में डुबकी लगाने के समान है; फिर भी जगन्माता, प्रकृतिरूपा महात्रिपुरसुन्दरी की कृपादृष्टि इस तन्त्र को पूर्ण करने में मूलकारण है। उसके वाद अनेकों ग्रन्थों के लेखक परम पूज्य पिता श्री प्रो. दलवीर सिंह चौहान का सहयोग माताश्री रामबेटी देवी की प्रेरणा, आभारार्ह है।

सर्वप्रथम मैं उच्च कोटि के कृषि वैज्ञानिक, अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों और शोध लेखों के लेखक, कीवी फल की खेती के आविष्कारक, कुलपति तथा भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के सहायक महानिदेशक जैसे पदों को सुशोभित कर चुके, सम्प्रति कई वैज्ञानिक समितियों के अध्यक्ष, उच्चकोटि के विद्वान्, परम पूज्य प्रातःस्मरणीय प्रोफेसर धर्मेन्द्र सिंह राठोर का अन्तर्हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका यदा कदा आशीर्वाद ही मेरे लिये वरदान है। वे सदैव मुझे कुछ लिखने के लिये प्रेरित करते रहते हैं।

सर्वाधिक आभारी तो मैं उन परमपूज्य ब्रह्म स्वरूप श्री ब्रजमोहन दास गुप्त का हूँ, जिन्होंने पाण्डुलिपि का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का सुअवसर प्रदान किया। मैं उनके इस कृतार्थ का ऋणी हूँ और रहूँगा। इसके साथ इस तन्त्र सृष्टि में पुरुष प्रकृति रूप श्री कमलेश गुप्त तथा श्री सचिन जी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने दास रूप ब्रह्म को इस ग्रन्थ सृष्टि में सहयोग किया।

इसके साथ सबको आभार व्यक्त करने के साथ पाण्डुलिपि के अस्पष्ट एवं असुन्दर वर्णों को कम्प्युटर द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर रूप प्रदान करने वाले जी. एस. पी. कम्प्युटर के श्री संदीप जी को भी आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ की सम्पूर्णता में मेरी प्रिय पत्नी डॉ. निर्मला के प्रेमोद्वेलित प्रेरणा भी आभरणीय है; साथ ही मेरे धर्म पिता श्री महावीर सिंह, सासू माता श्री की उत्साहपूर्ण प्रेरणा तथा भाई श्री ओ3म प्रकाश सिंह, श्री डॉ. थान सिंह, श्री नीलम कुमार, श्री शिव कुमार, श्री भीम सिंह, श्री सत्पाल सिंह और श्री रविन्द्र सिंह की उत्साहपूर्ण प्रेरणा भी आभार योग्य है।

साथ ही मैं अपने स्वार्थनिरपेक्ष सुहृद्गण डॉ. सरोज कुमार विशेष सचिव प्राविधिक शिक्षा उत्तर प्रदेश, संजय कुमार सिंह डायरेक्टर, एलीमैन्ट्री एजुकेशन बिहार, डॉ. सुधीर कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सत्यपाल सिंह संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सुभाष कुमार किरोड़ीमल कॉलेज दिल्ली, संजय सिंह जौनपुर, सी. ए. नवीन जोशी, का भी मैं ह्रदय से आभारी हूँ, जो मुझे वाद-विवाद में सहयोग करते रहे।

संसार में कितना भी उच्चकोटि का विद्वान् होते हुए भी त्रुटि होना स्वाभाविक है; परन्तु मैं तो एक सामान्य व्यक्ति हूँ। अतः विद्वानों से मेरा अनुरोध है कि इस पुस्तक लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा करते हुए संशोधन हेतु सूचित करने की कृपा प्रदान करेंगे।

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के कतिपय श्लोकों में व्याकरणात्मक त्रुटियां हैं। जिनका संशोधन नहीं किया गया है। संशोधन करने पर छन्दभंग का दोष उपस्थित होने के भय से यथावत् रख दिया गया है तथा कविता में शब्दत्रुटि क्षम्य होती है। अत: पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे।

मैंने इस ग्रन्थ की टीका का नाम अपनी पत्नी के नाम पर 'निर्मला' टीका रखा है; क्योंकि जिस प्रकार प्रकृति के विना पुरुष कुछ नहीं कर सकता। उसी प्रकार पत्नी के विना पति अक्षम है। अतः मेरी यह टीका सदैव निर्मल रहे इस कामना के साथ मां त्रिपुरेश्वरी के चरणों में समर्पित करता हूँ।

रूपेश कुमार चौहान

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
प्रथम पटल	1-10
द्वितीय पटल	11-20
तृतीय पटल	21-28
चतुर्थ पटल	29-34
पञ्चम पटल	35-39
षष्ठ पटल	40-45
सप्तम पटल	46-54
अष्टम पटल	55-62
नवम पटल	63-67
दशम पटल	68-74
एकादश पटल	75-82
द्वादश पटल	83-85

❖❖❖

मायातन्त्रम्

अथ प्रथमः पटलः

।।ॐ नमः परमदेवतायै।।

श्री ईश्वर उवाच

श्रृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि तत्त्वमन्यद् यथा पुरा।
तोयव्याप्ते तु सर्वत्र स्वर्गे मर्त्ये रसातले।।1।।

भूतभावन भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा कि हे देवि! पार्वति! अब मैं तुम्हें उस तत्त्व को वताऊंगा, जो कि अत्यन्त प्राचीनकाल सृष्टि के आदि में घटित हुआ है। हे देवि! सृष्टि के आदिकाल में जब कि स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक में सभी जगह पर जल ही जल व्याप्त था। जल के अलावा कहीं कुछ भी नहीं था।।1।।

विश्वे चैकार्णवीभूते न सुरासुरमानवाः।
न च क्षितिर्न वा किञ्चित् तोयमात्रावशेषिताः।।2।।

उस समय समस्त संसार एकार्णव (एक सागर) में व्याप्त था अर्थात् एक ही समुद्र था; आज की तरह सात समुद्र नहीं थे; क्योंकि पृथ्वी नहीं थी तो फिर समुद्रों का विभाग कैसे होता। अतः सात न होकर एक ही सागर में सर्वत्र जल ही जल था और एकार्णव एक समुद्र वाले इस संसार में न सुर थे, न असुर थे और न मनुष्य ही थे और न ही पृथ्वी थी। सर्वत्र जल ही जल था।।2।।

तदा विश्वोद्भवाद् देवात् सिसृक्षा समजायत।
ध्यात्वा स्वर्गादिसमये मायां सस्मार च प्रभुः।।3।।

तव विश्व से उत्पन्न देव से सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हुई और उन प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न (प्रभु) ने स्वर्ग आदि के समय में माया का ध्यान करके माया का स्मरण किया।।3।।

विशेषः—इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इस समय जो हम इस संसार को देख रहे हैं, वह कार्यरूप है। अतः जब कार्य है तो उसका कारण अवश्य

होगा। इसी के आधार पर हम इस सृष्टि के कर्ता ब्रह्म तक पहुंचते हैं। अतः वह ईश्वर, ब्रह्म कर्ता है, परन्तु कर्ता को उस वस्तु की आवश्यकता होती है, जिससे कि वह उस विशेष का निर्माण करे। जैसे कुम्हार जब घड़े को बनाता है तो उसे मिट्टी की आवश्यकता है। मिट्टी से ही वह घट का निर्माण करता है, उसी तरह उस ब्रह्म को माया की आवश्यकता हुई। अतः माया ही प्रकृति है, जो 24 तत्त्वों का एक समन्वय है। अतः इनमें सबसे पहले पृथ्वी का निर्माण हुआ; क्योंकि जब सर्वत्र जल ही जल था तो फिर आकाश, वायु, अग्नि और जल ये तो पहले से ही विद्यमान रहे थे, जो प्रकृति के आधारभूत तत्त्व हैं। तव ब्रह्मा ने पृथ्वी तत्त्व के निर्माण के लिए उन पहले से उपस्थित माया का स्मरण किया। जिसे दूसरे शब्दों में हम प्रकृति, चण्डी, काली, माहामाया, विष्णु की माया आदि नाम से पुकारते हैं। यही हैं–देवी माया, जिससे इस संसार का निर्माण हुआ। अतः ये संसार की उपादान कारण हैं तथा ब्रह्म (ईश्वर) निमित्त कारण है, जैसे कि घटरूप कार्य का निमित्त कारण कुम्हार है। जिस प्रकार कुम्हार घट का कर्ता है, उसी प्रकार इस आधार का कर्ता ईश्वर है, जिसे कोई ब्रह्म कहता है। कोई गौड कहता है। कोई अल्लाह कहता है।

तदा वटदलं भूत्वा तोयान्तः समवस्थितम्।
ततो नारायणं देवं सा दधार स्वलीलया॥4॥

अतः जब सर्वत्र जल ही जल था तव उस परमपिता परमेश्वर ब्रह्म अल्लाह गौड ने सृष्टि रचना अर्थात् संसार का निर्माण करने के लिए अपनी प्रकृति (माया) को याद किया तथा जव उन्हें सृष्टि करने की इच्छा हुई तभी याद किया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ऐसा वे पहले से सोच चुके थे। तब उसके बाद उस माया (प्रकृति) देवी ने वटदल बनकर जल मध्य स्थित उन परमेश्वर (नारायण) को अपनी लीला से धारण कर लिया॥4॥

विशेषः–यहाँ पर अत्यन्त मार्मिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ वट दल (वट वृक्ष की शाखायें और पत्तों) को कहा जाता है। वट वृक्ष जल में वनस्पति की उत्पत्ति का प्रतीक है। अतः यहाँ वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया गया है, जैसा कि वैज्ञानिकों का कहना है कि पहले जल ही जल था, फिर इसमें काई पैदा हुई, उसमें एक कीट पैदा हुआ, जिसे बिना हड्डी पसली का अमीवा कहा जाता है, फिर उसी से धीरे-धीरे मत्स्यादि के क्रम से मनुष्य रूप बना। अर्थात् अमीवा नामक बिना हड्डी-पसली (Without cell)

के जीव से अनेकों प्रकार से जीवों में बदलते हुए मत्स्य रूप आया जिसे मत्स्यावतार कहा जाता है। मत्स्य के बाद अनेकों जल जीवों के रूप में आते हुए जल और थल पर विचरण करने वाले कछुआ के रूप में जीवोत्पत्ति हुई, जिसे कच्छप अवतार कहा गया है। बाद में अनेकों जीवां के रूप में विकसित होता हुआ वराह (सुअर) रूप हुआ, तब बन्दर आदि के बाद मनुष्य रूप में जीव का विकास हुआ। इस प्रकार 84 लाख योनियों के रूप में घूमते हुए यह जीव मानव रूप में आया। यह हमारा पौराणिक जीव विकास है, जो डारविन महोदय के विकासवाद के सिद्धान्त से पूर्णत: मेल खाता है। विज्ञान ने जिसे आज सिद्ध किया है। यह भारतीय ग्रन्थों में बहुत पहले ही बताया जा चुका है। कहना होगा कि जल में वनस्पति से जीव की उत्पत्ति है। अत: यहाँ वट वृक्ष वनस्पति का प्रतीक है।अत: यह वट वृक्ष ईश्वर का आधार हुआ। ईश्वर यहाँ पर विष्णु को मान सकते हैं। अत: वे विष्णु व्रह्म अल्लाह खुदा ईश्वर गौड तो रहे होंगे, परन्तु वे निराधार होंगे; परन्तु उन्होंने अपने आधार के लिए प्रकृति माया का स्मरण किया और उस माया ने वटवृक्ष बनकर उन विष्णु अर्थात् जीव को आश्रय दिया। इसका भाव है कि सर्व प्रथम जीव (जीवनी शक्ति) वनस्पति में उत्पन्न हुई। यह वैज्ञानिक तथ्य है। कहीं–कहीं वट वृक्ष के स्थान पर कमल कहा गया है। जल से कमल, कमल से व्रह्मा, ब्रह्मा से संसार ऐसा तो वेदादि शास्त्रों में बहुत पहले से कहा जाता रहा है।

यहाँ श्लोक में माया ने नारायण को अपनी लीला से धारण कर लिया। इस कथन में गूढ़ वैज्ञानिक रहस्य भरा पड़ा है; क्योंकि नारायण शब्द का अर्थ है नार+अयन अर्थात् नार शब्द का अर्थ है–जल, अयन का अर्थ है–घर (निवास स्थान) अत: नारायण का अर्थ हुआ जल, घर है, जिनका, अर्थात् भगवान विष्णु। ऐसे यदि सोचा जाये तो विष्णु जीवनीय तत्त्व है, जिसे जीव कहा जाये तो अन्यथा नहीं है। तब नारायण का अर्थ हुआ–नार है घर जिसका अर्थात् जल है घर जिसका, इससे यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि जीव (विष्णु) का घर जल है। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि जल ही जीवन है। ऐसे भी वैज्ञानिक तथ्य है कि जल का सूत्र है H_2O अर्थात् जल हाइड्रोजन और आक्सीजन का मिश्रण है। आक्सीजन ही जीवन है, जो जल में है; क्योंकि आक्सीजन से ही समस्त जीव–जन्तु स्थित रहते हैं, अगर ऑक्सीजन नहीं हो तो पेड़–पौधे जीव–जन्तु मनुष्यादि सभी नष्ट हो जायेंगे। याद रहे जब

मनुष्य मरने के कगार पर होता है, तव उसे आक्सीजन द्वारा जीवित रखा जाता है आक्सीजन न मिलने पर मनुष्य प्राण त्याग देता है।आक्सीजन के कारण ही यह संसार चल रहा है, जिस दिन आक्सीजन समाप्त हो जायेगा, उसी दिन संसार नष्ट हो जायेगा। जहाँ जिस ग्रह पर आक्सीजन नहीं हैं, वहाँ जीवन भी नहीं है. जब तक वहाँ आक्सीजन नहीं होगी, जीवन नहीं होगा।जिस गृह पर जल होगा, वहाँ आक्सीजन अवश्य होगा।यदि वहाँ जल है तो जीवन भी होगा यदि जल है और जीव नहीं है तो धीरे-धीरे वहाँ वनस्पति होगी और बाद में जीव की उत्पत्ति होगी ही। यह शाश्वत सत्य है।

तब गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर हमें इस निष्कर्ष पर स्वतः पहुंच जाना चाहिए कि नारायण शव्द वैज्ञानिक रहस्य को रखता है; क्योंकि नार=जल है, घर जिनका, वे नारायण तथा जल में आक्सीजन होता है। अतः जल आक्सीजन का घर है, इससे यह स्पष्ट होता है। आक्सीजन का प्राचीन भारतीय संस्कृति में नाम है—विष्णु। अतः विष्णु भगवान् को यदि ऑक्सीजन कहा जाए तो लेशमात्र भी गलत नहीं होगा; परन्तु आधुनिक विज्ञान के प्रतिपादक समस्त वैज्ञानिक चमत्कार के मूलमन्त्रों को अग्नि में स्वाहा कर देने वाले पौंगापण्डित न मानें तो यह उनकी हठधर्मिता ही है। प्रत्येक वैज्ञानिक चमत्कार का मूल मन्त्र हमारे वेद पुराणादि ग्रन्थों में विद्यमान हैं। यहाँ विषय विस्तार के भय से प्रस्तुत करना उचित नहीं है।

विचचार तदा तोये स्वेच्छाचारः स्वयं विभुः।
विचरन्तं वटदले तोयेषु परमेश्वरम्॥5॥
वटवृक्षस्थितस्तत्र मार्कण्डेयो महामुनिः।
ददर्श परमेशानं शिवमव्यक्तरूपिणम्॥6॥

आगे भगवान् शिव पार्वती जी से कहते हैं कि सृष्टि के आदि में जब माया ने वटवृक्ष बनकर जल में स्थित नारायण को अपनी लीला से धारण कर लिया, तब वे स्वयं विशेष रूप से पैदा होने वाले प्रभु नारायण (विष्णु) अपनी इच्छानुसार जल में विचरण करने लगे, तब जलों के मध्य वटदल में विचरण करते हुए अव्यक्त (निराकार) परम ईशान परमेश्वर शिव को वटवृक्ष पर स्थित मार्कण्डेय मुनि ने देखा॥5-6॥

विशेषः—वट वृक्ष के पत्र, जल में वनस्पति का प्रतीक है अर्थात् जल में काई है, उस वटदल पर स्थित परमेश्वर वनस्पति (काई) जीव की उत्पत्ति

का प्रतीक हैं तथा महामुनि मार्कण्डेय ने देखा। यह उस समय के वैज्ञानिक महामुनि मार्कण्डेय थे, ऐसा घोषित होता है। अतः इस वैज्ञानिक अनुसन्धान के प्रथम अनुसन्धाता महामुनि मार्कण्डेय है, ऐसा स्पष्ट ध्वनित होता है।

तुष्टाव स तदा हृष्टो मुनिः परमकारणम्।
नमस्ते देवदेवेश सृष्टिस्थित्यन्तकारक!॥7॥

तव वहाँ वटदल (वनस्पति) में स्थित संसार के परम कारण संसार की रचना, संसार का पालन और संसार का संहार करने वाले विष्णु (जीवनीय तत्त्व) को देखकर प्रसन्न हुए महामुनि मार्कण्डेय सन्तुष्ट हो गये और फिर उन्होंने कहा कि हे देवों के देव सृष्टि स्थिति और संसार करने वाले तुम्हें नमस्कार है॥7॥

विशेषः—यहाँ पर प्रथम वैज्ञानिक महामुनि मार्कण्डेय को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि जल में उत्पन्न वनस्पति में ही जीवनीय तत्त्व (आक्सीजन) का निवास है।

ज्योतीरूपाय विश्वाय विश्वकारणहेतवे।
निर्गुणाय गुणवते गुणभूताय ते नमः॥8॥

तब उन्होंने कहा कि हे ज्योतिरूप, विश्व के कारण, विश्वरूप निर्गुण और सगुण स्वरूप गुणभूत परमेश्वर तुम्हे नमस्कार है॥8॥

विशेषः—यहाँ पर उन विष्णु (जीवनीय तत्त्व) को विश्व का कारण कहना तो उचित ही है साथ ही उन्हें सगुण और निर्गुण कहना भी उचित है; क्योंकि उनका निराकार जो सम्भवतः जीवतत्त्व में बदलने से पूर्व रहा हो, निर्गुण ही कहा जायेगा, परन्तु सगुण तो जीव की उत्पत्ति करने में हो ही गया। अतः उस आदि तत्त्व को सगुण और निर्गुण दोनों ही कहा जा सकता है। यह वैज्ञानिक अनुसन्धान का विषय है।

केवलाय विशुद्धाय विशुद्धज्ञानहेतवे।
मायाधाराय मायेशरूपाय परमात्मने॥9॥

उन मार्कण्डेय मुनि ने अपने ज्ञात जीवनीय तत्त्व को नमन करते हुए कहा कि हे केवल (एक मात्र) जीवन को प्रदान करने वाले, विशुद्ध रूप वाले, हे विशुद्ध ज्ञान को देने वाले, हे माया (प्रकृति के आधार (प्रकृति पर अवलम्बित) माया के ईश (प्रकृति के स्वामी) परमात्मा तुम्हें नमस्कार है॥9॥

नमः प्रकृतिरूपाय पुरुषायेश्वराय च।
गुणत्रयविभागाय ब्रह्मविष्णुहराय च॥10॥

महामुनि मार्कण्डेय ने कहा कि हे प्रकृति स्वरूप पुरुष रूप के लिये और ईश्वर स्वरूप के लिये सत्त्व रजस् और तमस् तीनों गुणों का विभाग करने वाले ब्रह्मा विष्णु और शंकर तीनों रूप वाले प्रभो तुम्हें नमस्कार है॥10॥

विशेषः—वनस्पति स्थित उस प्रथम जीव को प्रकृति का स्वरूप माना गया है। पुरुष रूप के लिये और ईश्वर रूप के लिये। अतः वह वनस्पति स्थित जीवनीय तत्त्व है, वही जीवन की रचना करने वाला है। वही ब्रह्मा (रचना करने वाला) वही विष्णु (पालन करने वाला) वही हर (प्राणों को हरने वाला) है। ऐसे भी देखिये आक्सीजन होने पर ही जीव की उत्पत्ति होती है। आक्सीजन ही जीव का पालन कर रहा है। जीव-जन्तु आक्सीजन से ही जीवित हैं। प्रायः चिकित्सक ऑक्सीजन की कमी होने पर मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति को आक्सीजन देकर जीवित रखते हैं तथा ऑक्सीजन मनुष्य के प्राण ले लेता है अर्थात् जब आक्सीजन नहीं मिलता तो जीव की मृत्यु हो जाती है। अतः यह ऑक्सीजन ब्रह्मा विष्णु और शंकर तीनों ही है।

नमो देव्ये महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
मायायै परमेशान्यै मोहिन्यै ते नमो नमः॥11॥

देवी के लिए नमस्कार है। महादेवी के लिए नमस्कार है। शिवा के लिए निरन्तर नमस्कार है, जो माया है, परमेशानी है, मोहनी है, उसके लिए मेरा नमस्कार है॥11॥

जगदाधाररूपायै प्रकाशायै नमो नमः।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपायै प्रकाशायै नमो नमः॥12॥

महामुनि मार्कण्डेय प्रकृति देवी को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि हे संसार की आधार रूप तथा संसार में प्रकाश करने वाली, ज्ञानियों की ज्ञान रूप अर्थात् ज्ञानियो में ज्ञान का प्रकाश करने वाली देवी तुम्हें मेरा नमस्कार है॥12॥

जगदाधाररूपायै प्रकाशायै नमो नमः।
...............................जगतां भागहेतवे॥13॥

हे संसार की आधार रूप तथा प्रकाश रूप तुमको नमस्कार है॥13॥

प्रपन्नोऽस्मि महामाये विश्वसृष्टिर्विधीयताम्।
इति स्तुत्वा मुनिस्तत्र विरराम सुसंयतः॥14॥

महामुनि ने प्रकृति से स्तुति करते हुए कहा कि हे महामाया प्रकृति देवी मैं प्रपन्न हूँ, आपकी शरण हूँ, अतः सृष्टि कीजिए। इस प्रकार स्तुति करके मुनि वहाँ अच्छी तरह संयमित होकर रुक गये। (स्थिर हो गये)॥14॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवत् प्रपपात च।
तत उत्थाय देवस्य नाभिपद्मसमुद्भवम्॥15॥
चतुर्वक्त्रं रक्तवर्णं ददर्श परमं शिशुम्।
सृष्टौ नियोजयामास तं ब्रह्माणं सुरेश्वरम्॥16॥

उसके वाद हाथ जोड़कर उन्होंने दण्डवत् किया और पैरों में गिर गये। उसके बाद उन देवों के ईश, नाभि से उत्पन्न कमल से पैदा होने वाले, चार मुख वाले, रक्तवर्ण वाले परम शिशु को देखा और फिर उन सुरेश्वर परमशिशु ब्रह्मा को सृष्टि की रचना करने में लगा दिया॥15-16॥

ध्यात्वा ब्रह्म तदा तत्र सप्तर्षीन् परमेश्वरि।
जनयामास मनसा मानसास्ते ह्यतः प्रिये!॥17॥

शंकर भगवान् ने कहा कि हे परमेश्वरि! जब प्रकृति देवी, माया ने देवों के स्वामी ब्रह्मा को सृष्टि की रचना करने में लगा दिया, तब फिर उन ब्रह्मा ने ध्यान करके अपने मन से सात ऋषियों को उत्पन्न किया, उनके मन से उत्पन्न थे, इसलिए वे ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे गये॥17॥

विना शक्तिं शक्तास्ते सृष्टिं कर्तुं मुनीश्वराः।
योनौ सृष्टिरतो ज्ञेया ततो योनिमकल्पयत्॥18॥

परन्तु शक्ति के बिना वे सात ऋषि संसार की रचना करने में समर्थ नहीं हुए तब उन्होंने जाना कि योनि में ही सृष्टि करने की शक्ति है, तव उसके बाद उन्होंने योनि की कल्पना की॥18॥

ततः कश्यपनामानं मुनिं पुनरजीजनत्।
पुनः सृष्टौ च तं पुत्रं ब्रह्मा प्रोवाच यत्नतः॥19॥

उसके बाद इस महामाया प्रकृति ने कश्यप नामक मुनि को उत्पन्न किया और फिर उन कश्यप मुनि को संसार की रचना (अर्थात्) जीवों की उत्पत्ति करने के लिए कहा कि यत्नपूर्वक जीवों को उत्पन्न करो॥19॥

जनयामास ततः कन्यां गुणरूपसमन्वितताम्।
नियोज्य मुनये तां तु ब्रह्मा प्रोवाच सृष्टये॥20॥

परन्तु जब कश्यप (रूप) नर को उत्पन्न कर दिया, परन्तु केवल नर से तो जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अत: नर की उत्पत्ति के बाद गुणरूप से युक्त अर्थात् आकार वाली (कन्या) को उत्पन्न किया और फिर उस कन्या को मुनि कश्यप के साथ नियुक्त कर अर्थात् नर और मादा को मिलाकर सम्भोग द्वारा सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा ने उन दोनों से कहा॥20॥

नानायोन्या कृतीस्तासु समस्त जीवजातयः।
उत्पादयामास तदा प्रजापतिरथ स्थितः॥21॥

और फिर उन दोनों कश्यप मुनि और उस आदिकन्या दोनों से अनेकों प्रकार के जीवों की जातियों को पैदा किया, तब इसके बाद प्रजापति ब्रह्मा स्थित हो गये।॥21॥

विशेष:–उपर्युक्त 10 से 21 तक के श्लोकों में जो भी कहानी स्वरूप कहा गया है, वह सब विज्ञान सम्मत है। समस्त का भाव यही है कि सर्वप्रथम इस प्रकृति ने जिस जीव को उत्पन्न किया, उससे सृष्टि सम्भावित न होती देखकर योनि की कल्पना की अर्थात् योनि को पैदा किया और नर और मादा दोनों से ही संसार की रचना की तथा यह सब किया प्रकृति माया ने ही। अत: प्रकृति माया ही सर्वे सर्वा है तथा प्रकृति जहाँ है, वहाँ पर जीवोत्पत्ति है। जहाँ नहीं है, वहाँ पर जीव नहीं है तथा प्रकृति है जन–जीवन को सुरक्षित रखने का वातावरण तथा उसमें भी वह वातावरण जो कि जीव को जीवित रख सके तथा जीव को सुरक्षित रखने का वातावरण है–ऑक्सीजन गैस की सम्यक् मात्रा में उपस्थिति। ब्रह्मा आदि पुरुष ने मन से सात ऋषियों को उत्पन्न किया, जिसे मानसी सृष्टि कहा गया है। इस कथन में वैज्ञानिकता है अधिक स्पष्ट तो विज्ञान के छात्र ही कर सकते हैं; परन्तु मेरे विचार से सात ऋषि (प्रकृति के ही तत्त्व हैं) सम्भवत:सूर्य के सात रंग सात ऋषि हो सकते हैं। हो सकता है प्रलयकाल में प्रचण्ड रूप से तपते हुए सूर्यदेव में सात रंग नहीं रहे हों। ये प्रकृति देवी के बाद में पैदा किये हों, क्योंकि सूर्य के प्रकाश में विद्यमान ये सात रंग ही वनस्पतियों में रंग भरने का कार्य करते हैं। ब्रह्मा द्वारा कश्यप नामक ऋषि की उत्पत्ति भी वैज्ञानिक तथ्य की ओर संकेत करती है।

ततो नारायणो देवस्तुष्टो मायामुवाच सः।
वटपत्रस्वरूपां त्वं यतो मां विधृताम्भसि॥22॥
अतो धर्मस्वरूपासि जगत्यस्मिन् सनातनि।
आराधयिष्यन्ति भुवि मनुजास्त्वां सनातनीम्॥23॥

प्रजापति ने जब अनेकों योनियों को उत्पन्न किया, तब सन्तुष्ट हुए नारायण भगवान विष्णु ने माया (प्रकृति) से कहा कि हे माया; क्योंकि वरगद के वृक्ष के पत्र स्वरूप तुमने जल में मुझे विशेष रूप से धारण किया है। विशेष रूप से स्थित किया हैं। इसलिए हे माया! हे प्रकृति! इस संसार में तुम सबसे प्राचीन हो और धर्म स्वरूप हो। अतः पृथ्वी पर सभी मनुष्य तुम्हारी आराधना करेंगे॥22-23॥

सर्वकामेश्वरो लोके मायां धर्मस्वरूपिणीम्।
मन्त्रमाराधने चास्याः प्रवक्ष्यामि शृणु प्रिये॥24॥

भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा कि संसार में सब कामनाओं को चाहने वाले तुम माया प्रकृति की पूजा करेंगे तथा आराधना में जो मन्त्र है, उसे मैं बताऊंगा ध्यान पूर्वक सुनो॥24॥

नादेन्दुसंयुतं दान्तं धर्माय हृत् ततः परम्।
षडक्षरो महामन्त्रो धर्मस्याराधने मतः॥25॥

'नाद' और 'इन्दु' संयत 'द' के अन्त तक उसके बाद धर्म के लिए हृत यह छः अक्षर वाला महामन्त्र है। जो धर्म की आराधना में स्वीकार किया गया है॥25॥

विशेषः—यह छः अक्षर का जो महामन्त्र है, वह क्या है? यह स्पष्ट नहीं हो रहा है। वैसे यदि नाद अक्षरों को लें तो 'द' तक छः अक्षर ध, ज, ब, ग, ड, द होते हैं; क्योंकि "हशः संवारा नादा घोषाश्च" सूत्र के अनुसार ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द हैं। इनमें द के अन्त तक छः ध, ज, ब, ग, ड, द होते हैं। अतः ध ज ब ग ड द ही छः अक्षर हैं। इन्दु का अर्थ चन्द्रबिन्दु हो सकता है। अतः धँ, जँ, बँ, गँ, डँ, दँ यह महामन्त्र ही होना चाहिये।

यं यं कामं समुद्दिश्य पूजयिप्यन्ति मानवाः।
अचिरादेव पश्यन्ति सर्वं कामं न संशयः॥26॥

शंकर जी ने कहा कि हे प्रिये! जिस जिस इच्छा को मन में रखकर मानव इन माया देवी (प्रकति) की आराधना करेंगे तो वहुत शीघ्र ही सभी इच्छाओं को पूरा हुआ देखेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।26।।

एवं ते कथितं देवि मायासम्भवविस्तरम्।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि।।27।।

।।इति श्रीमायातन्त्रे प्रथमः पटलः।।

❖❖❖

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार मैंने माया से होने वाले सृष्टि के विस्तार को तुम्हें बताया है, इसे यदि कोई सुनना चाहें तो किसी को मत कहियेगा।।27।।

।।इस प्रकार मायातन्त्र में प्रथम पटल समाप्त हुआ।।

अथ द्वितीयः पटलः

श्रीदेवी उवाच

कथयेशान! सर्वज्ञ! यतोऽहं तव वल्लभा।
ब्रूयुः स्निग्धाय शिष्याय गुरवो गुह्यमप्युत!॥1॥
आराधनं तु मायायाः कथयस्वानुकम्पया।
येन लोकास्तरिष्यन्ति महामोहात् सुरेश्वर!॥2॥

श्री देवी ने कहा कि हे संसार की रचना करने, सब कुछ जानने वाले शंकर जी; क्योंकि मैं आपकी प्रिय पत्नी हूं। मुझे तो बताइये; क्योंकि प्रिय शिष्य को गुरु को अत्यन्त गोपनीय रहस्य को भी बताना चाहिए। अतः हे देवाधिदेव। आप कृपा करके माया की आराधना की उस विधि को बताइये, जिसके द्वारा ये संसार के प्राणी महामोह से तर जायेंगे॥1-2॥

श्रीईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तस्याश्चाराधनं महत्।
या चिच्छक्तिः सैव माया सा दुर्गा परिचक्ष्यते॥3॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि। सुनो मैं तुम्हें उन देवी महामाया की आराधना की विधि बताऊंगा। अतः हे देवि! जो चित् शक्ति है अर्थात् प्राणियों (नर पादप पक्षी पुश कीट) आदि में जो चेतनता है, वही माया है और वही दुर्गा कही जाती है॥3॥

विशेषः—प्राणियों के शरीरों में जो चेतनशक्ति है, जिसके कारण प्राणियों में गतिशीलता है, वही दुर्गा अथवा माया है। दुर्गा सप्तशती में भी कहा गया है कि चित् रूपेण या व्याप्य स्थिता जगत्। अर्थात् जो जेतन रूप से समस्त संसार को व्याप्त करके स्थित है, वह दुर्गा है। यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है, वह यह कि कुछ दर्शनों के अनुसार जड़ और चेतन तत्त्व अलग-अलग हैं। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि चेतन तत्त्व ही समस्त जगत् (जड़तत्त्व) में व्याप्त होकर स्थित है। अतः जड़ में ही चेतन की उपस्थिति का सिद्धान्त यहाँ स्पष्ट प्रतिपादित है। जैसाकि चारवाक् दर्शन के अनुसार जड़ में ही चेतन का होना कहा गया है, उनके अनुसार यदि चेतन तत्त्व अर्थात् 'जीव' अलग होता तो मरने के बाद प्राणी के शरीर में कीड़े पैदा नहीं होते अतः यह निर्विवाद मानना होगा कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति है। यही

नहीं जड़ में सर्वदा जीव चेतन विद्यमान रहता है। यह अलग बात है कि किसी जड़ तत्त्व में चेतन अविकसित दशा में है तो कहीं विकसित है। कहीं उचित प्राकृतिक वातावरण की उपस्थिति में सद्य विकसित होता है। कहीं धीरे-धीरे होता है, कहीं नहीं भी होता; परन्तु सर्वत्र सभी जढ़ पदार्थों में चेतन का अस्तित्व है।

या दुर्गा सा महाकाली तारिणी बगलामुखी।
अन्नपूर्णा च सा माया गृहिणां कल्पशाखिनी॥4॥

आगे शिव कहते हैं कि यह जो चेतन शक्ति है, वही माया है, उसे ही दुर्गा कहा जाता है। वही जीव को तारने वाली है। वही बगलामुखी है तथा वह माया ही अन्नपूर्णा है और गृहस्थ पुरुषों की कल्पशाखाओं वाली है अर्थात् गृहस्थ जीवन की अनेकों शाखाओं वाली अर्थात् पुत्र-पुत्री- पोते-पोती नाती-नतिनी आदि हजारों शाखाओं को पैदा करने वाली है॥4॥

भोगदा मोक्षदा देवी तस्मात् पूर्णेति चक्ष्यते।
माया गुणवता देवी निर्गुणानां चिदात्मिका॥5॥

यह माया देवी (प्रकृति) ही सब प्रकार के भोग विलासों को देने वाली है और मोक्ष को भी देने वाली है। उसी कारण से यह पूर्णा कही जाती है। यह सगुणों की माया है और निर्गुणों की चित् शक्ति है, जिसे आत्मा कहा जाता है। अर्थात् यही शरीरों के रूप में दिखाई देने वाली देवी है तथा उन शरीरों में आत्मा रूप वाली है। अर्थात् साकार (सगुण) रूप से दृश्यमान शरीर भी वही है और उन शरीरों में विद्यमान निराकार निर्गुण (आत्मा) भी वही है। अत:सगुणों की वह माया है और निर्गुणों की चिदात्मिका (चैतन्य रूप आत्मा है) और दृश्यमान शरीर और उसमें स्थित आत्मा जो निर्गुण है, वह वही है॥5॥

यदि सा बहुभिः पुण्यैः प्रसीदति जनान् प्रति।
तदैव कृतकृत्यास्ते संसारात् ते बहिष्कृताः॥6॥

यदि वह देवी माया (प्रकृति) अनेकों पुण्यों द्वारा मनुष्यों के प्रति प्रसन्न हो जाती है। अर्थात् यदि वह देवी मनुष्यों के अच्छे कर्मों से प्रसन्न हो जाती है। तभी वे अपने पुण्यों का फल पाकर कृतकृत्य (धन्य) हो जाते हैं अर्थात् अपने शुभ कर्मों का फल पा जाते हैं और फिर सांसारिक जंजालों से बहिष्कृत हो जाते हैं। अर्थात् संसार सागर से तर जाते हैं॥6॥

दुरन्ता चावशा माया मुनीनाभपि मोहिनी।
श्रीकृष्णं मोहयामास राधा च गोकुले स्थिता॥7॥

आगे शंकर जी कहते हैं कि हे देवी! यह माया, दुरन्त है अर्थात् इसका अन्त आसान नहीं है, वहुत कठिन है और यह अवश्य है अर्थात् इसे कोई वश में नहीं कर सकता, जो सबको वश में करने वाली है, आखिर उसे कौन वश में कर सकेगा। ये माया मुनियों को भी मोहित करने वाली है। अरे। गोकुल में स्थित राधा ने जब श्रीकृष्ण को मोहित कर लिया तो अन्य की तो बात ही क्या है। अतः यह माया किसी को भी मोहित कर सकती है।।7।।

विशेषः—नर–मादा का परस्पर आकर्षण सन्तान धन–दौलत, खाना–पीना, भोग–विलास ये सब माया के ही रूप हैं। भला इनके वश में कौंन नहीं है। मुनियों को भी इसने मोह लिया था और आज भी मोहित कर रही है। इसी से मोहित ही आशाराम बापू कारावास का आनन्द ले रहे है तथा गुरुमीत सिंह नामक बाबा राम रहीम को तो माया ने अपने वश में करके जिस सुख को चक्रवर्ती सम्राट् भी नहीं भोग सकते, वहाँ तक पहुंचा दिया। यहाँ तक कि माया ने उन्हें स्वर्ग सुख पाने के लिये अत्यन्त घृणित क्रूर कर्म बलात्कार और जघन्य हत्याओं तक कराने को विवश कर दिया; परन्तु धन्य हैं जगद्दीप सिंह जैसे न्यायाधीश जिन्हें माया अपने वश में न कर सकी। वे चाहते तो करोड़ों लेकर छोड़ सकते थे। क्या ऐसे महान् पुरुषों को भगवान् नहीं कहना चाहिये? मैं तो उन्हें उससे भी महान् मानता हूँ; क्योंकि ईश्वर भी माया से लिप्त होता है। अतः ऐसे महापुरुषों को पराशक्ति कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं है। जितने भी सन्त–महात्मा–मुनि–महामुनि, आचार्य हैं, सब इसी के वशीभूत है। यह अलग बात है कि उन पर माया की कृपा दृष्टि है, उन्हें प्रकाश में आने से बचा लिया है, उन पर मायादेवी ने अपने कैमरे के प्रतिबिम्ब को नहीं डाला है। जिस दिन माया के कैमरे की किरणों के घेरे में आयेंगे, वे भी कार और आवास के स्थान पर कारावास की सजा अवश्य पायेंगे।

स चैव देवकीपुत्रस्तामाराध्य निरन्तरम्।
प्रकृताचारनिरतो जनानादेशयत् प्रभुः॥8॥

उन देवकी नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने उन माया देवी (प्रकृति) की निरन्तर आराधना करके प्रकृति आचार में निरत होकर लोगों को आदेश दिया

था। अर्थात् उन महामाया की पूजा करके उन्होंने मनुष्यों पर राज किया था। अतः वे देवी सब कुछ प्रदान कर सकती है।।8।।

अस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
शिवो वह्निसमारूढो वामनेत्रेन्दुभूषणः।।9।।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे पार्वति! उन माया देवी के मन्त्र का मैं तुम्हें प्रवचन करूंगा। हे कमल के समान मुख वाली पार्वती सुनो। ऐसा उन शिव ने कहा, जिनके वामनेत्र में चन्द्रमा सुभोभित है तथा जो अग्निपर समारूढ़ हैं।।9।।

एषा तु परमा विद्या देवैरपि सुदुर्लभा।
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतम्।।10।।

यही नहीं भगवान् शिव ने पार्वती से कहा कि यह जो मैं तुम्हे बताने जा रहा हूँ, वह परमा विद्या है, जो देवों के लिए भी दुर्लभ है। इस मन्त्रके रचयिता ब्रह्मा हैं तथा त्रिष्टुप छन्द में यह मन्त्र उदाहृत है।।10।।

देवता मुनिभिः प्रोक्ताः माया श्रीभुवनेश्वरी।
चतुर्वर्गेषु मेधावी विनयोगः प्रकीर्तिताः।।11।।

ये माया श्री भुवनेश्वरी तीनों लकों की मालिक हैं। इस माया देवी के विषय में देवताओं और मुनियों ने कहा है। चारों वर्णों में मेधावी विनियोग कहा गया है।।11।।

विशेषः—मेधावी विनियोग बुद्धि बढ़ाने वाला योग है, जो धर्म अर्थ काम मोक्ष से मुक्त है।

अङ्गानि माययान्यस्य ध्यायेद् देवीं चतुर्भुजाम्।
रक्तवर्णां पद्मसंस्थां नानालङ्कारभूषिताम्।।12।।
पट्टवस्त्रपरीधानां कलमञ्जीररञ्जिनीम्।
हारकेयूरवलयप्रवालपरिशोभिताम् ।।13।।
अर्केन्दुशेखरां बालां नयनत्रितयान्विताम्।
एवं ध्यात्वा महामायामुपचारैः समर्चयेत्।।14।।

माया द्वारा इस देवी के अंगों का ध्यान करना चाहिए और चार भुजाओं वाली देवी का ध्यान करना चाहिए। रक्त वर्णवाली और कमल पर स्थित तथा अनेकों अलंकारों से भूषित देवी का ध्यान करना चाहिए। पटवस्त्र

से ढकी हुई, कल-कल करते हुए मंजीर ध्वनि वाली, हार केयूर वलय (कंगन) और मूंगे से शोभित सूर्य-चन्दमा जिनके शिखर में है तथा जो तीन नेत्रों वाली है। ऐसी उन देवी का ध्यान करके महामाया के साधनों द्वारा उनकी अच्छी प्रकार पूजा करनी चाहिए।।12-14।।

गुरुं प्रणम्य विधिवद् गृह्णीयात् परमं मनुम्।
ततो देवीं प्रसाद्यैवं कृतकृत्यो भवेत् सुधीः॥15॥

इस प्रकार विधिवत् गुरु को प्रणाम करके परम मनु को ग्रहण करना चहिए। उसके बाद देवी को प्रसन्न करके बुद्धिमान् मनुष्य को कृतकृत्य (धन्य) हो जाना चाहिए।।15।।

अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने।
यस्याः प्रसादमासाद्य भवेद् गङ्गाधरः स्वयम्॥16॥

इसके बाद शंकर जी ने पार्वति जी से कहा कि हे देवि! अब मैं दुर्गा और मनु को बताऊंगा। हे कमल मुख वाली देवि! सुनो। जिसका प्रसाद पाकर भगवान् शंकर अर्थात् मैं स्वयं ही गंगा को धारण करने वाला हो गया था।।16।।

खान्तं बीजं समुद्धृत्य वामकर्णविभूषितम्।
इन्दुबिन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभम्॥17॥

मन्त्र है-ख के अन्त में जो बीज है, उसके समुद्धृत कर वाम कर्ण विभूषित चन्द्र बिन्दु से समायुक्त परम दुर्लभ बीज मन्त्र है।।17।।

चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम्।
एकाक्षरी समा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिया॥18॥

यह बीज मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों को प्रदान करने वाला है और साक्षात् महापाप को नष्ट करने वाला है। इस एक अक्षर वाली विद्या के समान तीनों लोकों में अन्य कोई विद्या नहीं है।।18।।

विशेषः-यह एक अक्षर वाली विद्या ॐ है, जो 'ख' आकाश में गूंज रही है और चन्द्र बिन्दु से युक्त है, यही प्रणव है, यहीं सबसे वड़ी विद्या है। यह ॐ शब्द है, जो खान्त अर्थात् आकाश के अन्त तक है। भाव यह है कि आकाश में व्याप्त है। हो सकता है कि यह ॐ शब्द में आकाश गूँज रहा है। जैसा कि प्राच्य विद्या सम्मेलन में आये हुए एक वैज्ञानिक महोदय ने कहा था कि आकाश में प्रकाश है तथा प्रकाश में गति होती है तथा जहाँ गति होती है,

वहाँ ध्वनि अवश्य ही होगी। अतः प्रकाश में ध्वनि है, परन्तु वह ध्वनि सामान्य कानों से ग्राह्य नहीं है। उन्होंने बताया कि हमने अत्यन्त सुग्राह्य श्रावक यन्त्र से ध्वनि को सुना है, जहाँ अं इं उं ऋं लृं की ध्वनि सुनायी देती है। अतः ॐ की ध्वनि भी वहाँ अवश्य होगी। यह तो अनुसन्धान का विषय है।

विना गन्धैर्विना पुष्पैर्विना होमपुरः सरैः।
विनाऽऽयासैर्महाविद्या जपमात्रेण सिद्धिदा॥19॥

वह विद्या बिना गन्धों और विना पुष्पों तथा विना यज्ञ-हवनों द्वारा एवं बिना प्रयास के जप मात्र से ही सिद्धि को प्रदान करने वाली है। भाव यह है कि ॐ का जाप बिना धूप-दीप-नैवेद्य बिना फूलमाला चढ़ाये बिना यज्ञ-हवन तथा बिना किसी प्रयत्न के सिद्धि देने वाला है।।19।।

नारदोऽस्य ऋषिर्देवि गायत्रीच्छन्द ईरितम्।
देवता च जगद्धात्री दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥20॥

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! इस उपर्युक्त मन्त्र के रचयिता (ऋषि) नारद मुनि हैं तथा यह मन्त्र गायत्री छन्द में प्रयुक्त है तथा इस मन्त्र की देवता संसार को धारण करने वाली मनुष्य की दुर्गति को नष्ट करने वाली दुर्गा है।।20।।

चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा सर्वतन्त्रेषु संस्थिता।
विविधा सा महाविद्या तच्छृणुष्व गणेश्वरि॥21॥

ये महामाया देवी दुर्गा धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारों को प्रदान करने वाली हैं तथा सभी प्रकार के तन्त्रों में सम्यक् प्रकार से स्थित हैं। अतः हे गणेश्वरि! वह महाविद्या अनेकों प्रकार की है। अतः उसे सुनो-।।21।।

कूर्जाद्यां वा जपेद् विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये।
वाग्भवाद्या जपेद् विद्यां तदन्ते वह्निसुन्दरि!॥22॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों वर्गों को प्राप्त करने के लिए कूर्चाद्या विद्या का जाप करना चाहिए। उसके अन्त में हे वह्नि सुन्दरि! वाग्भव (वाणी) से उत्पन्न विद्या का जाप करना चाहिए।।22।।

लज्जाद्यां वा जपेद् विद्यां फडन्ता वा जपेत् पुनः।
वधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तां प्रजयेत् कृती॥23॥

अथवा लज्जाद्या विद्या का जाप करना चाहिए, उसके बाद फिर

फडन्त विद्या का जप करना चाहिए। अथवा वधू बीज युक्त **स्वाहान्त जप** करना चाहिए।।23।।

लक्ष्म्याद्यां वा जपेद् विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये।
वाग्भवाद्यां जपेद् वापि प्रणवाद्या जपेत् तथा।।24।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार वर्गों की प्राप्ति के लिए लक्ष्म्याद्या विद्या का जप करना चाहिए अथवा वाग्भवाद्या विद्या का तथा प्रणवाद्या का जप करना चाहिए।।24।।

एवं सा त्र्यक्षरी विद्या कथिता ब्रह्मयोनिना।
दीर्घषट्कसमायुक्तनिजबीजानि पार्वति!।।25।।

इस प्रकार वह तीन अक्षरों वाली विद्या ब्रह्म योनि द्वारा बतायी गयी है। वह तीन अक्षरों वाली विद्या है 'ओइम्' इसमें ही तीन अक्षर हैं–अ उ और म्। यह उस परमपिता परमेश्वर का मुख्यनाम है तथा हे पार्वति! छः दीर्घ अक्षरों से समायुक्त निजबीज हैं।।25।।

विन्यसेदात्मनो देहे हृदयादिषु शाम्भवि।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि श्रृणु पर्वतनन्दिनि!।।26।।

इन सबको हे पार्वति! अपनी शरीर में विशेष रूप से धारण करना चाहिए और हृदय आदि में भी धारण करना चाहिए। वह कैसे शरीर और हृदय आदि में धारण करना चाहिए, उसका ध्यान में बताऊंगा। हे पर्वत पुत्री पार्वति! ध्यान देकर सुनो।।26।।

सिंहस्कन्धसमारूढां नानालङ्कारभूषिताम्।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्।।27।।

सिंह के स्कन्ध पर सवार अनेकों प्रकार के अलंकारों से शोभित चार भुजाओं वाली महादेवी की कल्पना करनी चाहिए तथा उनके गले में नाग के यज्ञोपवीत की भी कल्पना करनी चाहिए।।27।।

रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीतनुम्।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवगेहिनीम्।।28।।

यही नहीं, उन देवी के शरीर पर लाल रंग के वस्त्र को पहने हुए प्रभातकालीन सूर्य की आभा के समान शरीर की कल्पना करनी चाहिए। साथ ही उन्हें नारद आदि मुनियों द्वारा सेवा की जाती हुई की कल्पना करनी चाहिए।।28।।

त्रिबलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीम् ।
रत्नद्वीपमयद्वीपे सिंहासनसमन्विते॥29॥

जिनकी कमर में पड़ने वाली तीन रेखाओं में कर्धनी से युक्त नाभि के नाल में कमलिनी की कल्पना करनी चाहिए तथा यही नहीं उन महादेवी को रत्नों से भरे द्वीप में स्थित सिंहासन पर बैठी हुई का ध्यान करना चाहिए।।29।।

प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत् तां भवसुन्दरीम्।
एवं ध्यात्वा यजेद् देवीमुपचारैः पृथक् पृथक्॥30॥

खिले हुए कमल पर आरूढ उन त्रिलोक सुन्दरी का ध्यान करना चाहिए और इस प्रकार ध्यान करके अलग-अलग उपचारों द्वारा अर्थात् अलग-अलग विधियों से उनकी पूजा करनी चाहिये।।30।।

भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा न्यसेद् देहेषु पार्वति।
स्वाङ्के उत्तानकौ हस्तौ प्रणिधाय ततः परम॥31॥
हृदये हंसमन्त्रेण जीवं दीपनिभं सुधीः।
स्थापयेत् परमे व्योम्नि पृथिव्यादीनि च क्रमात्॥32॥

उन उपचारों से पहले भूतशुद्धि करनी चाहिए और भूतशुद्धि करके शरीरों में रखना चाहिए, उसके बाद अपनी गोद में उठे हुए हाथों को रखना चाहिए, उसके बाद हृदय में हंस मन्त्र के द्वारा दीपक के समान जीव को रखना चाहिए। उसके बाद परम व्योम परप्रकाश में क्रम से पृथिवी आदि को स्थापित करना चाहिए।।31-32।।

शिवापेष्ट्यादिभेदेन भिद्यते मरुतो गतिः।
मरुत्सखेन तेनेह पच्यते भक्तमेव तु॥33॥

शिवापेष्टी आदि के भेदन से वायु की गति भिन्न हो जाती है, फिर वायु को उस अग्नि के द्वारा भक्त ही पक जाता है।।33।।

विशेषः—ऊपर श्लोक में शिवा पेष्टयादि भेदेन के स्थान पर (क) पाण्डुलिपि में 'शिवो वेश्मादिभेदेन' है (ग) पाण्डुलिपिमें 'शिवपद्मत्वादि' है (ङ) में 'शिव पक्ष भेदेन' है तथा (च) पाण्डुलिपि में 'शिवादिक प्रभेदेन' पाठ है। अतः (क) पाण्डुलिपि के अनुसार शिव के वेश्म आदि भेद से शिव भक्त को पक्का कर देते हैं। (ग) पाण्डुलिपि के अनुसार अर्थ होगा कि शिव के कमल आदि भेद से वायु की गति भिन्न हो जाती है और फिर उस अग्नि

द्वारा इसी लोक में भक्त स्वयमेव पक्का हो जाता है। (ङ) पाण्डुलिपि के अनुसार शिव पक्ष के प्रभेद से अग्नि के द्वारा भक्त पक्का हो जाता है, वहाँ शिवादिक प्रभेद से वायु की गति टूट जाती है और फिर अग्नि द्वारा भक्त पक्का हो जाता है।

तस्मान्मन्त्री गुरोर्ज्ञात्वा नयेत् सर्वं परोपरि।
दीपयेदव्यवच्छिन्नं पावकं सर्वतोमुखम्।।34।।
पश्येदवान्तरं देहं कर्मरूपं ततः परम्।
वामकुक्षिस्थितं पापं पुरुषं कज्जलप्रभम्।।35।।
तं संशोष्य तथा दह्य जीवाधारं तु प्लावयेत्।
मूलाधारात् ततो जीवनं सोऽहंमन्त्रेण देशिकः।।36।।

इसलिए गुरु की मन्त्रणा जानकर अर्थात् गुरु की आज्ञा लेकर मन्त्र जाप करने वाले को एक-दूसरे के ऊपर ले जाना चाहिए और सब ओर अलग-अलग दीपक जलाने चाहिए। सभी ओर अपने हृदय में दीपक जलाकर अपने समस्त शरीर में अपने परम कर्म के रूप को देखना चाहिए अर्थात् अपने किये हुए कर्म की परीक्षा करनी चाहिये कि हम जो कर्म कर रहे हैं? वे कैसे हैं? उनसे किसी की हानि तो नहीं हो रही है। उसके बाद बांयी कोख अर्थात् पेट के बांये भाग में स्थित छिपे हुए काजल के समान काले पाप पुरुष को देखना चाहिए और फिर उस पाप पुरुष को अच्छी तरह शोषित करके तथा जलाकर जीव के आधार पर ले जाना चाहिए। अर्थात् पाप को मारकर जलाकर अपना जीव (अपना आत्मा) शुद्ध कर लेना चाहिए, यही भाव है। उसके बाद जीव को मूलाधार से मिलाकर 'सोऽहम्' वह मैं हूँ, ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए अर्थात् सोऽहम् मन्त्र।।34-36।।

विशेष-(च) पाण्डुलिपि परोपरि के स्थान पर शिवोपरि शब्द है, जिसके अनुसार अर्थ होगा कि शिव के ऊपर ले जाना चाहिये।

नयेत् परशिवां हंसमन्त्रेणादारमानयेत्।
एषा भूतशुद्धितन्त्रे प्रक्रिया कथिता मया।।37।।
तव स्नेहेन देवेशि चेदानीं प्रकटीकृता।।38।।

।।इति श्रीमायातन्त्रे द्वितीयः पटलः।।

❖❖❖

उसके बाद मन्त्र द्वारा परमशिवा को ले जाना चाहिए और फिर हंसमन्त्र द्वारा मूलाधार की ओर लाना चाहिए। इस प्रकार भगवान् शंकर ने पार्वती को भूत शुद्धि की प्रक्रिया बता दी और कहा कि हे पार्वति! मैंने यह तुम्हें भूतशुद्धिनी प्रक्रिया बतायी है तथा हे पार्वति! मैंने इस भूतशुद्धि की प्रक्रिया तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण प्रकट की है।।37-38।।

।।इस प्रकार मायातन्त्र में दूसरा पटल समाप्त हुआ।।

अथ तृतीय पटलः

श्रीदेवी उवाच

कथयस्व महादेव देव्या यन्त्रं स्तवं तथा।
कवचं परमाश्चर्यं यदुक्तं परमेष्ठिना॥1॥

श्री देवी पार्वती ने शंकर जी से कहा कि हे महादेव! देवी का यन्त्र और उनकी स्तुति को बताइये तथा उस परम आश्चर्य वाले कवच को भी बताइये, जिसको परमेष्ठी ब्रह्मा जी ने कहा था॥1॥

श्रीईश्वर उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यन्त्रं परमदुर्लभम्।
त्रिकोणं विन्यसेत् पूर्वं बहिः षट्कोणमेव च॥2॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे प्रिये! मैं तुम्हें परम दुर्लभ यन्त्र को बताऊंगा। अतः तुम ध्यान पूर्वक सुनो। पहले त्रिकोण का विशेष रूप से न्यास करना चाहिए, उसके बाहर षट्कोण ही होना चाहिए॥2॥

विशेष—एकत्र षट्कोण के स्थान पर नवकोण आया है।

त्रिबिम्बसंस्थितं सर्वमष्टपत्रसमन्वितम्।
त्रिरेखासहितं कार्यं तत्र भूपुरसंयुतम्॥3॥

उसके उसमें तीन बिम्ब होने चाहिए तथा सब आठ पत्रों से समान्वित हों, उसके चारों ओर तीन रेखाओं के साथ भूपुर संयुक्तयन्त्र बनाना चाहिए॥3॥

समीकृत्य यथोक्तेन विलिखेद् विधिनाऽमुना।
नानास्त्रसंयुतं कार्यं यन्त्रं मन्त्रसमन्वितम्॥4॥

उसके जैसा कहा गया है, उस विधि से अच्छी तरह समीकरण करके लिखना चाहिए। फिर अनेकों अस्त्रों से युक्त मन्त्र समन्वित यन्त्र बनाना चाहिए॥4॥

तत्र तां पूजयेद् देवीं मूलप्रकृतिरूपिणीम्।
पद्मस्थां पूजयेद् दुर्गां सिंहपृष्ठनिषेदुषीम्॥5॥

वहाँ पर उस यन्त्र में मूल प्रकृति रूपिणी देवी का पूजन करना चाहिए तथा उस यन्त्र में कमल पर आसीन सिंह की पीठ पर बैठने वाली दुर्गा का पूजन करना चाहिए॥5॥

विशेषः—उपर्युक्त श्लोकों में जिस प्रकार से एक यन्त्र के निर्माण की

प्रक्रिया बतायी है, वह रेखाओं से घिर हुआ रहता है तथा यही यन्त्र त्रिकोणों पर आधारित होता है और इसी में नौ कोण होते हैं। यही सम्भवतः श्रीयन्त्र है, जो महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति में विधिवत् बनाया हुआ है।

प्रभाद्याः पूजयेत् तास्तु स्थिता नवकोणके।
प्रभाद्याः शक्त्यः पूज्या गन्धाद्यैर्नवकोणके॥6॥

इस यन्त्र में प्रभा और आद्या का पूजन किया जाना चाहिए अर्थात् प्रभा और आद्या शक्तियों की गन्ध आदि नौ कोणों में पूजा होनी चाहिए॥6॥

प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः॥7॥

प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया और सर्व सिद्धिदा ये नौ शक्तियां हैं। इनकी पूजा नौ कोणों में होनी चाहिए॥7॥

ह्रीमाद्याः पूजयेत् तास्तु गन्धचन्दनवारिणा।
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य ह्रींकारं तदनन्तरम्॥8॥

सबसे पहले ह्रीम् आद्या शक्ति की गन्ध-चन्दन और जल से पूजा करनी चाहिए तथा उस पूजा में सबसे पहले ॐकार का उच्चारण करके, उसके बाद ह्रींकार का उच्चारण करना चाहिए॥8॥

विशेष—एक पाण्डुलिपि में ह्रीं माया शब्द है। अतः अर्थ में अन्तर नहीं आता।

यथा पदं चतुर्थ्यन्तं पूजयेत् क्रमतः प्रिये।
शङ्खपद्मनिधी देव्या वामदक्षिणयोगतः॥9॥

पूजा करते समय चतुर्थी विभक्ति का पद उच्चरित होना चाहिए जैसे देवी को स्वाहा या नमः कहना है, तो देव्यै नमः या देव्यै स्वाहा कहना चाहिए। शंकर भगवान् कहते हैं कि इस प्रकार हे प्रिये! क्रम से देवी के वाम और दक्षिण योग से शंख और पद्मनिधि की पूजा करनी चाहिए॥9॥

पूजयेत् परया भक्त्या रक्तचन्दनपूर्वकैः।
अर्घ्यदानं सदा कुर्यात् पूजान्ते नगनन्दिनीम्॥10॥

लाल चन्दन के साथ पराभक्ति से पूजा करनी चाहिए और पूजा के अन्त में सदा पर्वत पुत्री पार्वती को अर्घ्यदान करना चाहिए॥10॥

अङ्गावृतीः पुनः पूज्याः पत्रकोणेषु मातरः।
वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकनायकाः॥11॥

उस श्रीयन्त्र के पत्र के कोणों में अंकों से आवृत माताओं की पुनः पूजा करनी चाहिए और यन्त्रस्थ भूपुर में वज्र आदि आयुधों से युक्त लोकनायकों की पूजा करनी चाहिए।।11।।

विशेष–अन्य पाण्डुलिपियों में अङ्कवृत्ति तथा गङ्गाशक्ति शव्द हैं, जो उचित नहीं है।

एवं संपूज्य देवेशि! स्तोत्रं च कवचं पठेत्।
शृणु स्तोत्रं महेशानि! यदुक्तं परमेष्ठिना।

शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवेशि! इस प्रकार सम्यक् प्रकार से पूजा करके स्तोत्र और कवच को पढ़ना चाहिए। अतः हे महेशानि! अव तुम स्तोत्र को सुनो।।12।।

दुर्गे मातर्नमो नित्यं शत्रुदर्पविनाशिनि!।।12।।
भक्तानां कल्पलतिके! नारायणि! नमोऽस्तु ते।

हे मां दुर्गे! हे शत्रु के घमण्ड को नष्ट करने वाली मां तुम्हे नमस्कार है। हे भक्तों की कल्पलता (भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाली) मां! तुम्हें नमस्कार है।।12।।

विशेष–दैत्यदर्पनिषूदिनि! शब्द अन्य पाण्डुलिपि में है, परन्तु अन्तर नहीं।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये! शिवे! सर्वार्थसाधिके!।।13।।
शरण्ये! त्र्यम्बके! गौरि! नारायणि! नमोऽस्तु ते।

हे सब प्रकार मङ्गलों को प्रदान करने वाली! हे सब प्रकार के अर्थों को सिद्ध करने वाली! हे शरण में आये हुये की रक्षा करने वाली, तीन नेत्रों वाली गौरि! नारायणी तुम्हें मेरा नमस्कार है।।13।।

नमो नगात्मजे गौरि! शैलवासे समन्विते।।14।।
भक्तेभ्यो वरदे मातर्नारायणि! नमोऽस्तुत।

हे नग (पर्वत) की पुत्रि! हे शैल पर निवास करने वाली, हे शंकर से समन्वित, हे भक्तों को वर देने वाली मां नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।14।।

निशुम्भशुम्भमथिनि! महिषासुरमर्दिनि!।।15।।
आर्तार्तिनाशिनि! शिवे! नारायणि! नमोऽस्तुते।

हे निशुम्भ और शुम्भ को मारने वाली, हे महिषासुर का मर्दन करने

वाली, हे दुखियों के दु:खों को नष्ट करने वाली शिवे! नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।15।।

इन्द्रादिदिविषद्वृन्दवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहे!।।16।।
नानालङ्कारसंयुक्ते! नारायणि! नमोऽस्तु ते।

हे इन्द्र आदि विशेष सज्जन समूहों से वन्दित चरण-कमलों वाली, अनेक अलंकारों से संयुक्त नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।16।।

नारदाद्यैर्मुनिगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः।।17।।
पुरः कृताञ्जलिपुटे! नारायणि! नमोऽस्तु ते।

नारद आदि मुनिगण, सिद्धगण, विद्या को धारण करने वाले विद्वान् और नागगण हाथ जोड़कर जिसकी स्तुति करते हुए सामने खड़े रहते हैं। ऐसी हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।17।।

देवराजकृतस्तोत्रे! व्याधराजप्रपूजिते!।।18।।
त्रैलोक्यत्राणसहिते! नारायणि नमोऽस्तु ते।

देवों के राजा इन्द्र द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है और व्याधराज द्वारा जो प्रकृष्ट रूप से पूजित है तथा जो तीनों लोकों की रक्षा करने वाली हैं। ऐसी हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।18।।

अभक्तभक्तिदे! चण्डि! मुग्धबोधस्वरूपिणि!।।19।।
अज्ञानज्ञानतरणि! नारायणि! नमोऽस्तु ते।

जो अभक्त है अर्थात् भक्त नहीं है, नास्तिक हैं, उन्हें भी भक्ति प्रदान करने वाली चण्डि! हे मुक्तबोध स्वरूप वाली अर्थात् स्पष्ट ज्ञान रूप वाली, अज्ञान को ज्ञान से मिटाने वाली! नारायणि! तुम्हें नमस्कार है।।19।।

इदं स्तोत्रं पठेद् यस्तु प्रदक्षिणापुरःसरम्।
तस्य शान्तिप्रदा देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।।20।।

जो व्यक्ति प्रदक्षिणपुरः होकर अर्थात् पूरी तरह पूजा करके इस स्तोत्र को पढ़ेगा, उसके लिए मनुष्य की दुगति (दुर्दशा) को नष्ट करने वाली दुर्गा शान्ति प्रदान करने वाली होगी।।20।।

श्रीदेवी उवाच

कथिताः परमेशान दुर्गामन्त्रास्त्वनेकधा।
कवचं कीदृशं नाथ पूर्वं मे न प्रकशितम्।
तद्वदस्व महादेव यतोऽहं शरणं गता।।21।।

श्री देवी पार्वती ने शंकर जी से कहा कि हे भूतभावन शंकर! आपने मुझको दुर्गा के अनेक प्रकार के मन्त्र कहे हैं, परन्तु हे नाथ! दुर्गा का कवच कैसा है, जो आपने मुझे स्तोत्र से पूर्व नहीं बताया। अतः हे महादेव! उसको भी मुझे बताइये; क्योंकि मैं आपकी शरण में हूँ।।21।।

श्री महादेव उवाच

शृणु प्रिये! प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
पुरा देवासुरे युद्धे यदुक्तं शम्भुना त्वयि।।22।।
त्वं न स्मरसि कार्येण मुग्धाः प्रायो हि योषितः।

अब श्री महादेव ने कहा कि हे प्रिये! जो तुम मुझसे पूंछ रही हो, मैं तुम्हें बताऊंगा। जिसको बहुत पहले देवासुर सङ्ग्राम में तुम्हें शम्भु (मैंने) बताया था। अर्थात् प्राचीनकाल में जब देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ था, उस युद्ध में तुम देवताओं की ओर से लड़ रही थी, तब मैंने तुम्हें बताया था, उसी को बताऊंगा ध्यान देकर सुनो। हे पार्वति! कार्यों की व्यस्तता के कारण तुम्हें स्मरण नहीं हो रहा है; क्योंकि स्त्रियां स्वभाव से मुग्धा (भोली-भाली) होती हैं, वे प्रायः भूल जाती हैं।।22।।

अथ श्रीजगद्धात्री दुर्गाकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीजगद्धात्रीदुर्गा देवता चतुर्वर्गसिध्यर्थे विनियोगः।

अब यहाँ संसार को धारण करने वाली दुर्गा के कवच का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए विनियोग किया जाता है, जिसके रचयिता नारद हैं। अनुष्टुप छन्द है और इस कवच की देवता संसार को धारण करने वाली देवी दुर्गा हैं। अब यह जो कवच हैं, उसमें मां दुर्गा से शरीर के समस्त अंगों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है।

ओंकारो मे शिवः पातु ह्रीङ्कारः पातु भालकम्।
दुं पातु वदनं दुर्गा ङेयुक्ता पातु चक्षुषी।।23।।

ओंकार शिर की रक्षा करें, ह्रींकार मस्तक की रक्षा करें, दुं मुख की रक्षा करें, ङे चतुर्थी विभक्ति द्वारा जो दुर्गायै होता है, वह ङे प्रत्यय वाली चतुर्थी विभक्ति नेत्रों की रक्षा करें।।23।।

नासिकां मे नमः पातु कर्णावष्टाक्षरी सदा।
प्रणवो मे गलं पातु केशान् श्रीबीजमन्ततः।।24।।

'ओं ह्रीं दुर्गायै नमः' में जो नमः शब्द है, वही मेरी नासिका की रक्षा करे। अष्टाक्षरी सदा दोनों कानों की रक्षा करें 'प्रणव मेरे गले की रक्षा करें और अन्ततः श्रीबीज केशों की रक्षा करें।।24।।

लज्जा दन्तान् समारक्षेज्जिह्वां दुर्गा सदाऽवतु।
यै नमः पातु वक्त्रान्तं तालुं दुङ्काररूपिणी।।25।।

लज्जा देवी दाँतों की रक्षा करें, जिह्वा की रक्षा सदा दुर्गा करें। यैः नमः मुख के अन्त भाग की रक्षा करे और तालु की रक्षा दुंकाररूपिणी दुर्गा करें।।25।।

एकाक्षरी महाविद्या वक्षो रक्षतु सर्वदा।
कूर्चाद्या विविधा विद्या बाहू मे परिरक्षतु।।26।।

एकाक्षरी महाविद्या सर्वदा वक्षः स्थल की रक्षा करें, कूर्चाद्या जो अनेकों प्रकार की विद्यायें हैं, वे मेरी भुजाओं की रक्षा करें।।26।।

ॐदुर्गे पातु जङ्घे द्वे दुर्गा रक्षतु जानुनी।
द्वावुरू पातु युगलं रक्षिणि स्वाहयान्विता।।27।।

ॐ दुर्गा मेरी दोनों जंघाओं की रक्षा करें, दुर्गा मेरे जानुओं (घुटनों) की रक्षा करें, स्वाहा से युक्त मां दुर्गा मेरे दो ऊरुस्थलों की रक्षा करें।।27।।

जयदुर्गा सदा पातु गुल्फे द्वे चण्डिकाऽवतु।
कटिं जया पातु सदा नाभि मे विजयाऽवतु।।28।।

ॐ जय दुर्गा सदा मेरे जंघाओं (चूतड़ों) की रक्षा करें, जया देवी सदा कटि (कमर) की रक्षा करे और विजया मेरी नाभि की रक्षा करें।।28।।

उदरं पातु मे कीर्तिः पृष्ठं प्रीतिः सदाऽवतु।
प्रभा पादाङ्गुलीः पायात् श्रद्धा स्कन्धौ सदाऽवतु।।29।।

कीर्ति देवी मेरे उदर की रक्षा करें, प्रीति देवी मेरी पीठ की सदैव रक्षा करें। प्रभा देवी पैरों की अंगुलियों की सदा रक्षा करें, श्रद्धा देवी दोनों कन्धों की रक्षा करें।।29।।

मेधा कराङ्गुलीः सर्वा नखरान् श्रुतिमेव च।
शङ्खो गुल्फं तु पायान्मे चक्रं लिङ्गे सदाऽव्तु।।30।।

मेधा देवी दोनों हाथों की अंगुलियों की रक्षा करें और सब नाखूनों की रक्षा करें, शंख मेरे गुल्फों की रक्षा करे और चक्र लिंग में वीर्य की सदा रक्षा करे।।30।।

सर्वाङ्गं मे सदा पातु शङ्खो रक्षतु सर्वतः।
दुर्गा मां पातु सर्वत्र जयदुर्गा च दारकान्॥31॥

शंख मेरे समस्त शरीर की सब ओर से रक्षा करें और दुर्गा मेरी सर्वत्र रक्षा करे और जय दुर्गा मेरी पत्नियों की रक्षा करें॥31॥

यद् यदङ्गं महेशानि वर्जितं कवचेषु च।
तत् सर्वं रक्ष मे देवि! पतिपुत्रान्विता सती॥32॥

हे मां दुर्गे! जो-जो शरीर के अंग इस कवच में नहीं कहे गये हैं अर्थात् जो छूट गये हैं, हे देवि! उन समस्त अंगों की पति और पुत्रों के साथ रक्षा करें। अर्थात् अंगों के साथ-साथ पति और पुत्रों की भी रक्षा कीजिये॥32॥

इति ते कथितं देवि! कवचं वज्रपञ्जरम्।
धृत्वा रक्षोभयाच्छक्रो दिवि दैत्यगणान् बहून्॥33॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार मैंने तुम्हे वज्र पञ्जर कवच को कहा है। हे देवि! इस कवच को धारण करके अथवा इस कवच का ध्यान करके देवराज इन्द्र ने वहुत से दैत्यों को दुःखी कर दिया था॥33॥

विधृत्य कवचं वार्णि दुन्दुभिं च सहानुजम्।
हत्वा सर्वत्र कपिराड् विजयी वानरोत्तमः॥34॥

इस कवच को धारण करने वाली ने दुन्दुभि नामक राक्षस को उसके भाई के साथ मार दिया था और उसे मारकर कपिराज श्रेष्ठ वानर वाली सर्वत्र विजयी हुआ। अतः उसकी सर्वत्र विजय में इसी कवच का प्रभाव था॥34॥

सयन्त्रं कवचं चैव लिखित्वा भूर्जपत्रके।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा॥35॥
अभीष्टं लभते मर्त्यो वत्सरान्नात्र संशयः।
काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्॥36॥
बह्वपत्या जीववत्सा बन्ध्या धृत्वा प्रसूयते।

इस संयन्त्र और कवच को भोजपत्र पर लिखकर पुरुष अपने गले में या दक्षिण भुजा में धारण करे और नारी वामभुजा में धारण करे तो मनुष्य एक वर्ष में अभीष्ट फल को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है तथा जो नारी एक पुत्र वाली होती है और जिसके पुत्र मर गये हों या जिसके एक ही पुत्र हैं, वह अनेकों पुत्रों को प्राप्त करेगी और जिसके पुत्र मर जाते हैं, उसके पुत्र

जीवित रहेंगे। फिर नहीं मरेंगे। यही नहीं यदि बांझ स्त्री इसे अपनी वाम भुजा में धारण करेगी तो उसके भी पुत्र अवश्य उत्पन्न होंगे। 35-36।।

शतमष्टोत्तरावृत्तिः पुरश्चर्या विधीयते।।37।।
षण्मासतो भवेत् सिद्धिर्यथावत् परिचारतः।
अज्ञात्वा कवचं चैतद् दुर्गामन्त्रांस्तु यो जपेत्।
अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः।।38।।

।।इति मायातन्त्रे तृतीयः पटलः।।

❖ ❖ ❖

जो व्यक्ति 108 बार इनके इस कवच का पाठ करेगा तो यदि वह परिचार से यथावत् करता है तो छः माह में ही सिद्धि हो जानी चाहिए तथा जो बिना जानकार इस दुर्गा मन्त्र का जाप करेगा, वह कम आयु वाला निर्धन और मूर्ख होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।37-38।।

।इस प्रकार मायातन्त्र में तीसरा पटल समाप्त हुआ।।

अथ चतुर्थःपटलः

श्रीईश्वर उवाच

श्रृणु पार्वति! मन्त्राणां पुरश्चर्याविधिं प्रिये!।
जपेदष्टाधिकं लक्षं पुरश्चरणासिद्धये॥1॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे पार्वति! हे प्रिये! अब तुम मन्त्रों की पुरश्चर्या विधि को सुनो–अतः पुरश्चरण सिद्धि के लिए एक लाख आठ बार मन्त्र का जाप करना चाहिए।।1।।

दशांशं होमयेदाज्यैस्तिलमिश्रैः सुसाधकः।
तर्पणं चाभिषेकं च तद्दशांशत आचरेत्॥2॥

हे पार्वति! एक लाख जाप करना चाहिए, उसका दशवां अंश अर्थात् दस हजार बार मन्त्र से हवन करना चाहिए तथा अच्छे साधक को घी और तिल की आहुतियां देनी चाहिए तथा उसका दशवां भाग तर्पण और देवी का अभिषेक करना चाहिये अर्थात् एक हजार बार मन्त्र से अभिषेक और तर्पण करना चाहिए।।2।।

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते दक्षिणां गुरवे ददेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगांस्तु समाचरेत्॥3॥

और अनत में ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और गुरु को दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार मन्त्रों को सिद्ध करने वाले व्यक्ति को प्रयोगों को अच्छी प्रकार करना चाहिए।।3।।

विशेषः–यह श्लोक (ग) पाण्डुलिपि में नहीं है। अतः ब्रह्मभोज को टाला जा सकता है।

मत्स्यमांसैः सूपपूपैर्मृगैः शशकशल्लकैः।
पूजयेत् परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥4॥

उसके बाद मछली और मांस सूपपूप मृगों के मांस शशक (खरगोश) शल्लक (कांटेदार सराई नामक जंगली पशु) के मांसों से पराभक्ति द्वारा दुर्गति को नष्ट करने वाली दुर्गा की पूजा करनी चाहिए। अर्थात् बलि देकर साधक को खाना चाहिए और खिलाना चाहिए।।4।।

विशेषः मत्स्य मांसैः के स्थान पर (ग) पाण्डुलिपि में 'मद्य जावा पाठ है तथा (च) पाण्डुलिपि में 'मद्यमांस प्रसूनैः' है और (ङ) में सुरामांसैः

बहुविधैः पाठ है। यहाँ सबसे उचित "सुरामांसैः बहुविधैः" क्योंकि इसमें सुरा और मांस दोनों आ जाते हैं।

स्वयम्भुकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः।
जपायावकसिन्दूररक्तचन्दनसंयुतैः ॥5॥
नानामांसैः शुभैर्द्रव्यैर्गन्धद्रव्यादिसंस्कृतैः।
काकैः शुक्रैः पेचकैश्च मेषैच्छागैर्नरैरपि॥6॥
गजैरुष्टैः खरैर्गृध्रैः पूजयेद् विधिनाऽमुना।
तदा भवेन्महासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा॥7॥

उसके बाद स्वयम्भु कुसुमों (सफेद) सुगन्धित फूलों से युक्त जपा पुष्प यावक (महावर) सुन्दर-लालचन्दन युक्त अनेकों प्रकार के मांसों और गन्धयुक्त द्रव्यादि से संस्कृत (शुद्ध किये गये) कौए, तोते, पेचक, भेंड़, और बकरों के मांसों यहाँ तक कि हाथियों, ऊंटों, गधों, गीधों द्वारा इस विधि से पूजा करनी चाहिए। तब ही महासिद्धि होती है। यहाँ इस कार्य में विचार नहीं करना चाहिए। अर्थात् इसमें बुरा न मानकर करना चाहिए।। 5-7॥

मालाविधानं परमं शृणुष्व कमलानने!।
अकारादिक्षकारान्ताः पञ्चाशद्बिन्दुसंयुताः॥8॥

महादेव ने पार्वती जी से कहा कि हे कमल मुखी अब तुम माला के विधान को सुनो। अकार से लेकर क्ष तक 50 अक्षर होते हैं, जो बिन्दु से संयुक्त होने चाहिए। अर्थात् अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं एं ऐं ओं औं अं अः, कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं,ञं, टं, ठं, डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, बं, भं, मं, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं क्षं॥8॥

क्षमेरुका महीप्रान्ता वर्णमाला सुसिद्धिदा।
प्रथिता शक्तिसूत्रेण चारोहप्रतिरोहतः॥9॥

(क्षमेरुक) यह वर्णमाला पृथ्वी पर्यन्त सुन्दर सिद्धि का प्रदान करने वाली है। इन 50 अक्षरों को शक्तिसूत्र (धागे द्वारा) आरोह प्रतिरोह क्रम से ग्रथित करना चाहिए॥9॥

जपेदेकाग्रमनसा साष्टवर्गाक्षरान् क्रमात्।
पुच्छादिषु महादेवि! यावन्मुखमतन्त्रतः॥10॥

एकाग्रचित्त होकर माला का जप करना चाहिए तथा वह जाप आठ

वर्गों के क्रम से करना चाहिए और हे महादेवी! उसकी पूंछ से लेकर मुख तक अर्थात् शुरू से आखिर तक माला का जाप करना चाहिए।।10।।

क्षकारं तु मुखं देवि मेरुं तद् विद्धि पार्वति!।
पद्मबीजादिभिर्माला बहिर्योगे शृणुष्व ताः।।11।।

हे देवि! माला में पचास अक्षर हैं, उनमें क्षकार (क्ष) उस माला का मुख है, उसे ही हे पार्वति! मेरु समझना चाहिए अर्थात् उसे सबसे ऊंचा मेरु पर्वत समझो। अब कमल के बीज आदि से जो माला बनती है, जो याग (यज्ञ) से वाहर होती है, उसके बारे में सुनो—वह कैसी होनी चाहिए, यह मैं बताता हूँ।।11।।

पद्माक्षशङ्खरुद्राक्ष पुत्रजीवकमौक्तिकैः।
स्फटिकैर्मणिरत्नैश्च सौवर्णैर्विद्रुमैस्तथाः।।12।।
राजतैः कुशमूलैश्च गृहस्थाक्षरमालिका।
अङ्गुलीगणनादेकं पर्वण्यष्टगुणं भवेत्।।13।।

पद्माक्ष—कमल के बीजों की माला, शंखों की माला, रुद्राक्ष की माला, पुत्री जीवक की माला, मोतियों की माला, स्फटिकों की माला, मणियों की माला, राजत की माला, कुश की जड़ों की माला, गृहस्थ अक्षरों की माला। इस प्रकार इतने द्रव्यों की माला होनी चाहिए तथा उनकी संख्या अंगुली की गणना एक और आठ मिलाकर 9 पर्व होनी चाहिए अर्थात् 'अं' अंगुली के पर्वों को नौ बार होनी चाहिए; क्योंकि अंगुली में 12 गांठ होती है। अतः उन्हें यदि 9 बार पढ़ेंगे तो 108 होंगे। इस प्रकार 108 बार ही जाप करना द्योतित हो रहा है।।12-13।।

पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शङ्खैः सहस्रकम्।
प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसहस्रकं मतम्।।14।।

पुत्रजीव (कमल बीजों) द्वारा दश गुने सौ के अर्थात् हजार जाप करना चाहिए। शंखों की माला से एक हजार बार जाप करना चाहिए। मूंगों की मणियों की और रत्नों की माला से दश हजार बार जापकरना चाहिए। ऐसा माना गया है।।14।।

तदेव स्फटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते।
पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात् सौवर्णैः कोटिरुच्यते।।

कुशग्रंथ्या कोटिशतं रुद्राक्षै स्यादनन्तकम्॥15॥

स्फटिक (संगमरमर) की माला से वहीं अर्थात् दश हजार बार जाप करना चाहिए तथा मोतियों की माला से एक लाख बार जाप करना चाहिए। ऐसा कहा जाता है तथा पद्माक्षे (कमल दण्ड) की माला से दश लाख बार और सौ वर्ण की माला से एक करोड़ बार जाप करना कहा जाता है। कुश की गांठों से सौ करोड़ (एक अरब) बार तथा रुद्राक्षों से अनन्त बार जाप करने चाहिए॥15॥

प्रवालैर्विहिता माला प्रयच्छेत् पुष्कलं धनम्।
वैष्णवे तुलसीकाष्ठैर्गजदन्तैर्गणेश्वरे॥16॥

मूंगों द्वारा बनायी गयी माला पुष्कल धन प्रदान करती है।वैष्णव (विष्णु के लिए) तुलसी की लकड़ियों से बनी माला का प्रयोग होना चाहिए। गणेश्वर (गणेश) जी को प्रसन्न करने के लिए हाथी दांतकी माला का जाप किया जाना चाहिए॥16॥

त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षै रक्तचन्दनैः।
भुवनेश्याः प्रवालैश्च तद्भेदेषु च पार्वति॥17॥

महात्रिपुर सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिए रुद्राक्ष और चन्दन से बनी मालाओं द्वारा जाप करना चाहिए और भुवनेशी को प्रसन्न करने के लिए मूंगों की माला का जाप करना चाहिए॥17॥

शिवे रुद्राक्षभद्राक्षैः काष्ठैर्वापि सुनिर्मितैः।
राजपटैर्मञ्जुघोषैः कथिता मालनिर्णयः॥18॥

भगवान शिव ने कहा कि हे पार्वति! रुद्राक्ष और लकड़ियों से अच्छी तरह बनायी गयी और राजपटों और मञ्जुघोषों वाली माला का निर्णय कहा गया है॥18॥

मालाविधिरिति प्रोक्त श्रृणु सूत्रविधिं प्रिये!।
पृथिवीदेवेन्द्रपुण्यस्त्रीकीर्तिग्रन्थिवर्जितम्॥19॥

भगवान् शिव ने कहा कि हे पार्वति! इस प्रकार मैंने तुम्हे माला विधि बतायी है। अब तुम सूत्रविधि सुनो– अर्थात् कैसे उन सबके दानों को धागे में पिरोना है, उस विधि को सुनो–माला के धागे में पृथ्वी, इन्द्र, पुण्य, स्त्री, कीर्ति और ग्रन्थि (गांठ) नहीं होनी चाहिए॥19॥

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य पट्टसूत्रमथापि वा।
मुखे मुखं तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोज्य च॥20॥

धागे को पहले तीन गुना कीजिये तीन गुणा कर उसे भानिये और फिर उस तीन गुने का तीन गुना कर भानिये। धागा कपड़े का होना चाहिए। फिर धागे के मुख को मुख में मिलाकर पूंछ में पूंछ को मिलाना चाहिए॥20॥

ग्रथयेन्निर्जने मन्त्री ततः शोधनमाचरेत्।
क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन तज्जलैः॥21॥

मन्त्र पढ़ने वाले को निर्जन स्थान में माला को गूंथना चाहिए, उसके बाद माला का शोधन करना चाहिए। पंचगव्य अर्थात् गौ के घी, दही, दूध, मूत्र और गोवर से उस माला को धोना चाहिए, उसके बाद ताजे जल से धोना चाहिए॥21॥

चन्दनागुरुगन्धाढ्यैर्वामदेवेन घर्षयेत्।
धूपयेत् तामघोरेण लेपयेत् तत्पुरुषेण तु॥22॥

उसके बाद चन्दन, अगरु की गन्ध आदि द्रव्यों से वामदेव द्वारा घर्षण करना चाहिए अर्थात् घिसना चाहिए और अघोर मार्ग द्वारा उसे धूप देना चाहिए और उस पर गन्धादि का लेप करना चाहिए॥22॥

मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु सकृत् सकृत्।
मेरुं च मन्त्रयेत् तेन मूलेनापि पृथक् पृथक्॥23॥

पञ्चम द्वारा ही प्रत्येक दाने को मन्त्रित करना चाहिए माला के मेरु (ऊपर) के भाग को और उसके पुञ्छ भाग को अलग-अलग मन्त्रित करना चाहिए॥23॥

विशेष—पञ्चम का अर्थ यहाँ पाँचवां मकार मैथुन भी अर्थ लिया जा सकता है।

संस्कृत्यैवं ततो मालां तत्प्राणांस्तत्र योजयेत्।
मूलमन्त्रेण तां मालां पूजयेत् साधकोत्तमः॥24॥

उसके बाद माला को संस्कृत करके, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अर्थात् उसके सभी दानों में प्राणों को डालना चाहिए और उत्तम साधक को उस माला को मूल मन्त्र से पूजना चाहिए॥24॥

देवप्राणांस्तु तत्रैव प्रतिष्ठाप्य यजेच्च ताम्।
ॐमाले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि॥25॥

चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।
मायाबीजादिकां कृत्वा रक्तैः पुष्पैः समर्चयेत्॥26॥
गोमुखादौ ततो मालां गोपयेन्मातृजारवत्।
अक्षमालां स्वमन्त्रं तु गुरु नैव प्रकाशयेत्॥27॥

॥इति मायातन्त्रो चतुर्थःपटलः॥

❖ ❖ ❖

उस माला में वहीं देवता के प्राणों की प्रतिष्ठा कर उसकी यज्ञ करनी चाहिए अर्थात् हवन में उस पर आहुति देनी चाहिए और उस समय ॐ माले-माले-महामाले: सर्वतत्त्वस्वरूपिणि! चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव'। इस मन्त्र की आहुति देनी चाहिए। उसके वाद मायाबीज आदि करके लालरंग के फूलों से उसकी सम्यक् पूजा करनी चाहिए,उसके वाद उस माला को गोमुख (गोरोचन) आदि में उसी प्रकार छिपा कर रख देना चाहिए। जिस प्रकार माता के जार (यार) को पुत्र छिपाकर रखता है॥25-27॥

॥इस प्रकार मायातन्त्र में चौथा पटल समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चमः पटलः

श्रीदेवी उवाच

कथयेशान सर्वज्ञ दुर्गानामफलं प्रभो।
श्रुतं किञ्चिन्मया पूर्वं यदुक्तं सुरसंसदि॥1॥

अब श्रीदेवी पार्वती ने भगवान् शंकर से कहा कि ईशान! हे सब कुछ जानने वाले प्रभो! अब मुझे दुर्गा के नाम के फल को बताइये। इसका कुछ फल मैंने पहले देवों की सभा में सुना था। कृपया संसार के कल्याण के लिए फिर बताइये॥1॥

श्रीईश्वर उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं सदेवासुरसङ्गरे॥2॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे प्रिये! जिसको पहले देवासुर संग्राम के समय ब्रह्मा जी ने कहा था, उस गुप्त से गुप्त महान् दुर्गा नाम के फल को तुम्हें बताऊंगा, ध्यान देकर के सुनो॥2॥

धन्यं यशस्यामायुष्यं प्रजापुष्टिविवर्द्धनम्।
सहस्रनामाभिस्तुल्यं दुर्गानामवरानने॥3॥

इस दुर्गा नाम के जाप से धन, यश और आयु की प्राप्ति होती है तथा इस नाम से सन्तान की पुष्टि का वर्धन होता है अर्थात् सन्तान हृष्ट-पुष्ट होती है। अतः सुन्दर मुख वाली पार्वति! यह दुर्गा नाम हजारों नामों के समान है॥3॥

महापदि महादुर्गे आयुषो नाशमागते।
जातिध्वंसे कुलोच्छेदे महानिगडबन्धने॥4॥
व्याधिशरीरसम्पाते दुश्चिकित्सामयेऽपि वा।
शत्रुभिः समनुप्राप्ते बन्धुभिस्त्यक्तसौहृदे॥5॥
जपेद् दुर्गायुतं नाम ततस्तस्मात् प्रमुच्यते।
दुर्गेति मङ्गलं नाम यस्य चेतसि वर्तते॥6॥
स मुक्तो देवि संसारात् स नम्यः सुरकैरपि।
दुर्गेति द्व्यक्षरं मन्त्रं जपतो नास्ति पातकम्॥7॥

महान् आपत्ति में, महा कठिनाइयों में तथा आयु का नाश उपस्थित हो जाने पर अर्थात् मृत्यु के समय में, जातियों का नाश होने में, कुल का नाश

होने में और महानिगड के बन्धन में अर्थात् महाजाल में फंसने पर, कठिनाई से चिकित्सा होने वाले शरीर में, रोग पैदा हो जाने में, शत्रुओं द्वारा घेर लिए जाने पर, भाई बन्धुओं द्वारा प्रेम के छोड़ने में, दुर्गायुक्त नाम का जाप करना चाहिए। अतः वह नाम उपर्युक्त सभी प्रकार के दुःखों से प्रमुक्त कर देता है।।4-7।।

दुर्गा इस प्रकार का मङ्गल नाम जिसके चित्त में वर्तमान है हे देवि! वह संसार सागर से मुक्त हो जाता है और देवों द्वारा भी नम्य हो जाता है। दुर्गा यह दो अक्षर वाला मन्त्र जपने से मनुष्य का कोई पाप नही रहता अर्थात् उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

कार्यारम्भे स्मरेद् यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः।
दुर्गेति नाम जप्तव्यं कोटिमात्रं सुरेश्वरि।।8।।

किसी भी कार्य के प्रारम्भ में जो दुर्गा देवी का नाम स्मरण करे, उसकी सिद्धि शीघ्र हो जाती है अर्थात् दूर नहीं होती। अतः हे देवस्वामिनि पार्वति! दुर्गा इस नाम को करोड़ों बार जपना चाहिए।।8।।

तत्तद्दशांशतो हुत्वा तर्पयित्वा तदंशतः।
अभिषिव्य च विप्रेन्द्रान् भोजयित्वा दशांशतः।।9।।

उसका दशवां भाग अर्थात् दश लाख बार हवन करना चाहिए और उसको भी दशांश अर्थात् एक लाख बार तर्पण करना चाहिए। उसका दशवां भाग अर्थात् दश हजार बार ब्राह्मणों का अभिषेक कर उन्हें भोजन कराना चाहिए।।9।।

असाध्यं साधयेद् देवि! साधको नात्र संशयः।
होमाद्यशक्तो देवेशि! द्विगुणं जपमाचरेत्।।10।।

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! पार्वति! दुर्गा का नाम लेने से साधक असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है तथा हे देवेशि! यदि कोई व्यक्ति जप हवन ब्राह्मण भोजन तर्पण नहीं कर सके तो उसे दूना अर्थात् दो करोड़ बार दुर्गा के नाम का जप करना चाहिए। यहाँ पर यह साधन ऐसे व्यक्ति के लिए बताया है, जो गरीब है, हवन ब्राह्मण भोज नहीं करा सकता, उसे दो करोड़ बार दुर्गा नाम का जप करना चाहिए। अतः जो फल जप, हवन, ब्रह्मभोज से होगा; वही फल दो करोड़ नाम जपने से होगा।।10।।

अथवा ब्राह्मणान्तं च साधकानां च भोजनात्।
व्यङ्गं साङ्गं भवेत् सर्वं नात्र कार्या विचारणा।।11।।

अथवा अन्त में ब्राह्मणों और साधकों को भोजन कराने से सब व्यंग और सांग होना चाहिए। इसमें विचार नहीं करना चाहिए।।11।।

एतत्कल्पसमा देवि नाश्वमेधादयः परे।
दुर्गानामजपात् तुल्यं नान्यदस्ति कलौ भुवि।।12।।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! यह कल्प के समान है। इससे बढ़कर अश्वमेध आदि यज्ञ भी नहीं है तथा हे देवि! इस पृथ्वी पर कलियुग में दुर्गा के नाम को जपने के समान अन्य कोई जप तप साधन नही है।।12।।

शरत्काले तु दुर्गायाः पुरतो जपमाचरेत्।
अगणया च चन्द्रादिग्रहणे जपमाचरेत्।।13।।

शरत्काल (जाड़े के दिनों) में दुर्गा का पुरतः (प्रातःकाल)जप करना चाहिए और बिना गिनती किए हुए सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय जप करना चाहिए।।13।।

विशेषः—अन्य पाण्डुलिपियों में कुछ अधिक पाठ है। जैसे कि

किमन्यैः कर्म विस्तारैः कथितं तेऽद्रिसम्भवे।
सर्वान्कामानवाप्नोति यद्यदिष्टतमं भुवि।।
रवीन्द्रोर्ग्रहणे देवि पुरश्चरणमाचरेत्।
सूर्येन्दुपर्वसदृशः कालोनास्ति महीतले।।
यदि वा लभ्यते देवि बहुभिः पुण्यसंचयैचः।

यहाँ पर शंकर जी पार्वती जी से कहते है कि हे देवि! पर्वतपुत्री पार्वति! मैं अन्य कर्म विस्तार से क्या कहूँ। दुर्गा के जप से मानव संसार में जो अच्छी से अच्छी कामनायें हैं, उन सभी को प्राप्त करता है। अतः हे देवि! सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय जब तक ग्रहण रहे तब तक दुर्गा नाम का जप करना चाहिए। अतः हे देवि! सूर्य-चन्द्रग्रहण के समान कोई भी अच्छा इस भूतल पर समय नहीं है। यह समय बड़े ही पुण्यों के संचय से प्राप्त होता है। अतः जो व्यक्ति इस समय के महत्त्व को समझकर इस काल में जप करे तो समझो उसके अनेको पुण्य हैं, जिनके कारण वह ऐसा कर रहा है।

गणनं स्नानदानादौ न जपे परमेश्वरि।
रवीन्द्वोर्ग्रहणे पृथ्व्यां जपतुल्या न च क्रिया।।14।।

तस्मात् सर्वं परित्यज्य जपमात्रं समाचरेत्।
तेनैव सर्वसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥15॥

शंकर जी ने कहा कि हे परमेश्वरि! स्नान दान आदि में और जप में गणना नहीं होनी चाहिए। अतः सूर्य-चन्द्रग्रहण के समय में जप करने के समान अन्य कोई क्रिया नहीं है। इसलिए सूर्य-चन्द्रग्रहण के समय सब कुछ छोड़कर के दुर्गा के नाम का जप करना चहिए। उसी से सब प्रकार की सिद्धि हो जाती है। इस कार्य में विचार नहीं करना चाहिए अर्थात् इस कार्य को बिना विचार किये ही करना चाहिए॥14-15॥

उपरागो यदाकाशे तदा देवीं प्रकाशते।
सुषुम्णान्तस्तथैवासौ दृश्यते नगनन्दिनि॥16॥

अब भगवान् शंकर बताते हैं कि जिस समय सूर्य अथवा चन्द्रमा पर ग्रहण पड़ता है, उस समय आकाश में जो उपराग अर्थात् एक दिव्य प्रकार का प्रकाश होता है, उस समय दुर्गा (प्रकृति) देवी प्रकाशित होती है। अतः उस समय हे पर्वतपुत्रि! सुषुम्णा के अन्तर्गत वह दुर्गा दिखाई देती है॥16॥

मनस्तत्रैव संन्यस्य ध्यात्वा तत् परमाद्भुतम्।
जपेदेकाग्रमनसा नाकाशमवलोकयेत्॥17॥

उस समय हे देवि! मन को वहीं सुषुम्णा नाड़ी में अच्छी तरह स्थित करके उस परम अद्भुत दुर्गा का ध्यान करके एकाग्र मन से जप करना चाहिए और उस समय आकाश को नहीं देखना चाहिए॥17॥

विदधीत जपं तावन्मुक्तिर्यावद् भवेत् तयोः।
ततः स्नात्वा च होमादि ग्रहणान्ते समाचरेत्॥18॥

और फिर उस समय तक जप करना चाहिए, जिस समय सूर्य अथवा चन्द्रमा की मुक्ति न हो जाये। अर्थात् जब राहु सूर्यग्रहण में सूर्य को और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा को मुक्त न कर दे; क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि राहु जब सूर्य अथवा चन्द्रमा को ग्रहण करते हैं, तभी सूर्य अथवा चन्द्रमा का ग्रहण होता है, यह पौरणिक धारणा है। जो भी हो, यह एक गूढ़ रहस्य है। अतः जब ग्रहण समाप्त हो जाये, तब ग्रहण के अन्त में स्नान करके होम आदि करना चाहिए॥18॥

साधकान् भोजयेद् विप्रान् मिष्ठान्नैर्बहुविस्तरैः।
युवतीः कुलकन्याश्च शिवाः सम्भोजयेच्छिवे॥19॥

ग्रहण के बाद स्नान करके होमादि करना चाहिए और फिर उसके बाद साधकों और ब्राह्मणों को बहुत अधिक मिष्ठान्नों के साथ भोजन कराना चाहिए तथा हे पार्वति! युवतियों, कुल कन्याओं और साधुओं को भोजन कराना चाहिए।।19।।

ततस्तु दक्षिणां दद्याद् विभवस्यानुसारतः।
गुरुभ्यस्तदभावे तु साधकेभ्यः प्रदापयेत्।।20।।

उसके बाद अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरुओं को तथा गुरु न हों तो साधकों को दक्षिणा देनी चाहिए।।20।।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत् सकलेप्सितान्।
एतत्ते कथितं देवि! रहस्यं परमाद्भुतम्।।21।।

इस प्रकार मन्त्र का जाप करने वाला सिद्ध मनुष्य समस्त इच्छित वस्तुओं को सिद्ध कर लेता है। इस प्रकार हे देवि! पार्वति! मैंने यह तुम्हें परम आश्चर्य जनक रहस्य कहा है।।21।।

नैतत् त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च।
शिवाभक्ताय दुष्टाय द्वेष्टे चैव विशेषतः।।22।।
अशुश्रूषवेऽभक्तायंदुर्विनीताय दीयताम्।
इति ते कथितं गुह्यं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि।।23।।

।।इति मायातन्त्रे पञ्चमः पटलः।।

हे देवि! तुम इस परम अद्भुत रहस्य को घमण्डी, नास्तिक, दुष्ट, शिव का भक्त न हो उसको, दुष्ट पुरुष को और जो सबसे वैर रखता हो उसको, जो सुनने की इच्छा न रखता हो, उसको और जो किसी का भक्त न हो, उसको कभी मत बताना। इस प्रकार हे देवि। मैंने यह गुह्य तथ्य कहा है, अब और क्या सुनना चाहती हो?।।22-23।।

।।इस प्रकार मायातन्त्र में पांचवां पटल समाप्त।।

अथ षष्ठः पटलः

श्रीदेवी उवाच

देवदेव! महादेव! कथयस्वानुकम्पया।
यदि न कथ्यते देव! विमुञ्चामि तदा तनुम्॥1॥
सर्वतत्त्वमयस्त्वं हि सर्वयोगमयः सदा।
सुषुम्णान्तर्गतं देव! यद् दृष्टं परेश्वर॥
एतद्रहस्यं परमं सर्वयोगोत्तमोत्तमम्॥2॥

श्रीदेवी ने शंकर जी से कहा कि हे देवों के देव महादेव! तुम सब तत्त्वमय हो अर्थात् तुम सब तत्त्वों से युक्त हो तथा सभी योगों को जानने वाले हो। अतः मुझे यह बताओ कि सुषुम्णा नाड़ी के अन्तर्गत जो आपने देखा हो, इस सब योगों में उत्तम-उत्तम रहस्य को मुझे बताओ। हे देव! यदि तुम नहीं बताओगे तो मैं अपने शरीर को छोड दूंगी अर्थात् अपने प्राण दे दूंगी॥1-2॥

श्रीईश्वर उवाच-

अधुना संप्रवक्ष्यामि सुषुम्णामध्यसंस्थितम्।
सूर्यपर्व महेशानि चन्द्रपर्व तथैव च॥3॥

अब भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! अब मैं तुम्हें सुषुम्णा के मध्य स्थित सूर्य पर्व और चन्द्र पर्व को बताऊंगा॥3॥

सुषुम्णावर्त्ममध्यस्थं सूर्यपर्व परात्परम्।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जपयज्ञेषु तत्पराः॥4॥

सुषुम्णा नाड़ी में परात्पर एक-दूसरे के बाद सूर्य पर्व और चन्द्र पर्व स्थित हैं, जहाँ कि ब्रह्मा आदि देवता जप और यज्ञ में तत्पर हैं। वे लगातार जप और यज्ञ कर रहे हैं॥4॥

किं पुनर्मानवाश्चैव वराकाः क्षुद्रबुद्धयः।
पुष्करद्वीपवासाश्च ये चान्ये मानवाः प्रिये॥5॥
तेषां च परमेशानि! किञ्चित् सिद्धि प्रजायते।
सूर्यपर्व वरारोहे बहुभाग्येन लभ्यते॥6॥

जब ब्रह्मा आदि देवता ग्रहणकाल में जप यज्ञ कर रहे हैं, तब पुष्कर द्वीप में रहने वाले बेचारे बेकार कम बुद्धि वाले मानवों की क्या कही जाये।

अतः हे पार्वति! उनकी भी कुछ सिद्धि हो जाती है। अतः हे देवि! सूर्य का ग्रहण काल बड़े भाग्य से प्राप्त होता है।।5-6।।

तथैव चन्द्रपर्वाख्यं जपयोग्यं सुदुर्लभम्।
नातः परतरःकालः कश्चिदस्ति वरानने॥7॥

उसी प्रकार चन्द्रग्रहण का काल जप के योग्य है, जो बहुत ही दुर्लभ है। अतः सुन्दर मुख वाली पार्वति! इससे अच्छा समय अन्य कोई नहीं है।।7।।

सहस्रारे महापद्मे चन्द्रस्तिष्ठति सर्वदा।
मूलाधारे महेशानि स्वयं सूर्यः प्रकाशते॥8॥

अतः हे देवि! सुषुम्णा नाड़ी में हजार कलियों वाले महापद्म (महाकमल) पर सूर्य सदा स्थित रहते हैं तथा सुषुम्णा के मूलाधार में स्वयं सूर्य सदा प्रकाशित रहते हैं।।8।।

स्वाधिष्ठाने तु देवेशि राहुस्तिष्ठति सर्वदा।
चन्द्रसूर्यग्रहं देवि यदा भवति राहुतः॥9॥

शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवि! सूर्य और चन्द्रमा को जब राहु ग्रस लेते हैं, तब सुषुम्णा के अधिष्ठान में राहु सदैव स्थित रहते हैं।।9।।

तदैव सहसा देवि सहस्रारे मनो न्यसेत्।
सूर्यपर्वणि माहेशि! मूलाधारे मनो दधे॥10॥

उसी समय हे देवि! सहस्रार हजार पंखुड़ियों वाले कमल में सहसा (अचानक ही) मन लग जाता है। अतःलगाना चाहिए। अतःहे महादेवि सूर्यग्रहण में मूलाधार में मन को लगाना चाहिए।।10।।

ब्राह्मपर्व महेशानि! दृष्ट्वा पूर्णं च देशिकः।
मनो निवेश्य चार्वङ्गि! चन्द्रे च ब्रह्मपङ्कजे॥11॥
सूर्ये वा चञ्चलापाङ्गि! सर्वं भवति निष्फलम्।
सुषुम्णाख्या नदी यत्र साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी॥12॥

शंकर जी ने कहा कि हे महेशानि साधक पूर्ण ब्राह्मपर्व (पूर्णग्रहण)को देखकर ब्रह्मकमल और चन्द्र में मन को स्थित करके अथवा सूर्य में मन को पूरी तरह स्थित करके हे चञ्चल नेत्रों वाली पार्वति! सब सांसारिक वस्तुएं निष्फल हो जाती है। जहाँ पर सुषुम्णा नदी है, जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूप वाली है।।11-12।।

गङ्गादिसर्वतीर्थानि प्रयागं वदरी तथा।
हरिद्वारश्च चार्वङ्गि गया काशी सरस्वती॥13॥
सिन्धुभैरवशोणाद्या ब्रह्मपुत्रश्च सुन्दरि!।
अयोध्या मथुरा काञ्ची काशी माया अवन्तिका॥14॥
द्वारावती च तीर्थेशी भूत्वा प्रकृतिमूर्तितः।
गयादिसर्वतीर्थानि तत्र तिष्ठन्ति सन्ततम्॥15॥

तथा हे पार्वति! वहाँ पर गङ्गा आदि सभी तीर्थ हैं तथा वहाँ प्रयाजराज और बदरीनाथ तीर्थ है तथा हे सुन्दर शरीर वाली देवी पार्वति! हरिद्वार, गया और काशी तीर्थ है तथा सरस्वती, सिन्धु, भैरव, शोण और ब्रह्मपुत्र नदियां हैं। वहाँ अयोध्या, मधुरा, काञ्ची, काशी, माया, अवन्ती, तीर्थेशी, द्वारिकापुरी सभी प्रकृति की मूर्ति वनकर स्थित हैं। अतः गया आदि सभी तीर्थ वहाँ सदैव स्थित रहते हैं।13-15॥

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि मनो ह्यन्तर्दधे शिवे।
यः पश्येच्चञ्चलापाङ्गि सहस्रारे निशाकरम्॥16॥
मूलाधारे महेशानि यः पश्येत् सूर्यपर्वणि।
राहुग्रहसमायुक्तमन्तरात्मनि पार्वति॥17॥
दृष्ट्वाश्चर्यमिदं भद्रे स्थापयेद् हृदयाम्बुजे।
यत्र नित्या महामायां सुषुम्णा रुद्ररूपिणी॥18॥

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! चन्द्र और सूर्यग्रहण में जो अपने मन को शिव में अन्तर्धान कर दे तथा जो सहस्रार कमल में चन्द्रमा को देखे तथा सुषुम्णा नाड़ी के मूलाधार में सूर्यग्रहण के समय अपनी अन्तरात्मा में राहु ग्रह से समायुक्त सूर्य को देखे तो वह देखकर यह आश्चर्य होगा कि हृदयकमल में नित्य रुद्ररूपिणी महामाया सुषुम्णा नाड़ी स्थित है॥16-18॥

यस्या वामे इडा नाडी दक्षिणे पिङ्गला मता।
स्नात्वा तत्र हृदे वीरः शिवशक्तिमयो भवेत् ॥19॥

जिसके वाम भाग में इडा नामक नाड़ी है और दक्षिण (दांये) भाग में पिङ्गला मानी गयी है। उस नद में स्नान कर वीर पुरुष शिव की शक्ति से युक्त हो जाता है॥19॥

विशेषः-(ग) पाण्डुलिपि में 'स्नात्वा तत्र हृदे वीर' के स्थान पर 'गयादि सर्वतीर्थान्तः' पाठ है, जिसके अनुसार अर्थ होता है कि गया आदि सब तीर्थों के अन्तर्गत मनुष्य शिवशक्तिमय हो जाता है।

शिवशक्तिमयी साक्षात् सा सन्ध्या वरवर्णिनि।
सन्ध्यास्नानं मयैतत् ते कथितं योगिदुर्लभम्।।20।।

शंकर जी कहते हैं कि हे वरवर्णिन (श्रेष्ठ वर्ण वाली) पार्वति! ग्रहणकाल में जो सन्ध्या हो जाती है अर्थात् जो कुछ समय सायंकालीन अन्धकार सा हो जाता है, वह सन्ध्या शिवशक्तिमयी होती है। उस सन्ध्या में स्नान करना योगियों के लिए दुर्लभ है, यह मैंने तुम्हे कहा है।।20।।

सुषुम्णावर्त्ममध्यस्थं यद् दृष्टं वरवर्णिनि!।
दृष्ट्वा चन्द्रग्रहं भद्रे सूर्यं वा जपमाचरेत्।।21।।
तावत्कालं जपेन्मन्त्रं यावन्मोक्षं वरानने!।

सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग के मध्य स्थित हो, जिसने ग्रहण को देखा, उसे चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण को देखकर जप करना चाहिए तथा हे सुमुखि! तब तक जप करना चाहिये, जब तक चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण समाप्त न हो जाये।।21।।

एतत् तत्त्वं महेशानि ब्रह्मा जानाति माधवः।।22।।
इन्द्राद्या देवताः सर्वा बहुभाग्येन लभ्यते।
ज्ञात्वा तत्त्वमिदं देवि! देव्या नागादयोऽपरे।।23।।
प्रजप्यते इष्टविद्या शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयात्।

शंकर जी ने कहा कि हे महेशानि! इस कथित तत्त्व को साधक ब्रह्मा और माधव जानते हैं। इन्द्र आदि सभी देवता बड़े भाग्य से इस तत्त्व को प्राप्त करते हैं। इस तत्त्व को जानकर नाग आदि दूसरे लोग प्रकृष्टरूप से जप करते हैं और इष्ट विद्या की शीघ्र सिद्धि प्राप्त करते हैं।।22–23।।

पुष्करादिनिवासाश्च ये लोकाः सुरवन्दिते!।।24।
ते सर्वे च महेशानि! किञ्चित् फलमवाप्नुयुः।
भारते बहुकालेन सिद्ध्यन्ति नगनन्दिनि!।।25।।

पुष्कर आदि तीर्थ में जो लोग निवास करते हैं, वे सभी हे महेशानि! कुछ ही फल प्राप्त करते हैं अर्थात् उन्हें सूर्य एवं चन्द्रग्रहण का पूरा फल प्राप्त नहीं होता; क्योंकि पुष्कर आदि द्वीपों में सूर्य और चन्द्रमा प्रायः बहुत कम समय ही दिखायी देते हैं, जिन्हें उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव कहा जाता है, वहाँ तो सूर्य-चन्द्र का नाम मात्र दर्शन होता है। अतःवहाँ उन्हें ग्रहण का फल कैसे प्राप्त होगा; परन्तु भारत में हे पर्वत पुत्रि! सूर्य और चन्द्रग्रहण बहुत समय तक रहते हैं।।24–25।।

विशेष–उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि पुष्कर द्वीप ग्रीन लैण्ड अथवा उत्तरी ध्रुव ही हो सकता है; क्योंकि वहीं पर सूर्य का दर्शन बहुत कम होता है।

नानादोषवृत्तः कालः कलिरेव तु मूर्तिमान्।
ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य देवा नागादयोऽपरे॥26॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये चान्ये सुरसत्तमाः।
चन्द्रसूर्यपदं गत्वा प्रजपन्तीष्टसिद्धये॥27॥

यह कलिकाल अर्थात् कलियुग का समय अनेकों दोषों से युक्त है। इसमें साक्षात् कलि उपस्थित रहते हैं। सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में देवता, नाग आदि दूसरे लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिव और जो अन्य श्रेष्ठ देवता हैं, वे चन्द्र और सूर्य के पद को प्राप्त कर इष्ट सिद्धि के लिए दुर्गा का जाप करते हैं॥26–27॥

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि! यत् तेजः सूपजायते।
तत् सर्वं चञ्चलापाङ्गि! ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः॥28॥
वहन्ति चञ्चलापाङ्गि! मानुषास्त्वधमाःकुतः।
कलिकालस्य लोके तु भारते वरवर्णिनि!॥29॥
नानादोषाः प्रजायन्ते अतो नैव च सिद्धियति।
चन्द्रसूर्यग्रहे देवि! लोका भारतवासिनः॥30॥
तत्पूजयेदेकभवत्या नान्यथा तु कदाचन।
स्नानं दानं तथा श्राद्धमिन्दोः कोटिगुणं भवेत्॥31॥

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय जो तेज उत्पन्न होता है, उस तेज को हे चञ्चल नेत्रों वाली पार्वति! ब्रह्मा आदि स्वर्ग के देवता वहन करते हैं। अधम मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? कलियुग में हे वरवर्णिनि! भारत में अनेक दोष पैदा होते हैं। अतः सिद्धि नहीं होती है। इसलिए हे देवि! चन्द्र और सूर्यग्रहण के समय भारतवासी लोगों को उस मां दुर्गा की भक्ति से पूजा करनी चाहिए, यदि नहीं की जायेगी तो कभी भी सिद्धि नहीं होगी; क्योंकि चन्द्रग्रहण काल में स्नान–दान तथा श्राद्ध का फल करोड़ गुना हो जाना चाहिए॥28–31॥

सूर्ये दशगुणं देवि! नान्यथा मम भाषितम्।
जपेत् तर्हि फलं यद्वन्नान्यथा तद् भवेत् क्वचित्॥32॥

तथा हे देवि! पार्वति! सूर्यग्रहण में स्नान-दान तथा श्राद्ध का फल उससे भी दश गुना अर्थात् दश करोड़ गुना हो जाता है। यह मैंने अन्यथा नहीं कहा है। इसलिए जैसा फल बताया गया है, उसी के अनुसार जप करना चाहिए, अन्यथा कहीं भी कभी भी वैसा फल नहीं प्राप्त होगा।।32।।

एतत् तत्त्वं हि कथितं सुषुम्णामार्गसंस्थितम्।
अतिगोप्यं महत्पुण्यं सारात्सारं परात्परम्।।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदि कल्याणामिच्छसि।।33।।

।।इति श्री माया तन्त्रे षष्ठः पटलः।।

❖❖❖

अन्त में शंकर जी ने कहा कि हे पार्वति! यह मैंने तुमसे सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग में स्थित तत्त्व कहा है। यह तत्त्व सारों का सार है तथा परा विद्याओं से भी आगे तथा महान् पुण्य रूप है तथा अत्यन्त गोपनीय है। अतः तुम यदि कल्याण चाहती हो तो किसी को भी मत बताना।।33।।

।।इस प्रकार श्री मायातन्त्र में छठवां पटल समाप्त हुआ।।

अथ सप्तमः पटलः

श्रीईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि अतिगुह्यं परात्परम्।
सुषुम्णावर्त्ममध्यस्थं यन्मन्त्रं तत् शृणु प्रिये॥1॥
एतन्मन्त्रमविज्ञाय यो जपेत् सूर्यपर्वणि।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यादन्ते नरकमाप्नुयात्॥2॥

श्री पार्वती से कहा कि हे प्रिये! इसके बाद अब मैं सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग में स्थित जो अत्यन्त गुप्त और पर से भी पर मन्त्र है, उसको बताऊंगा अतः तुम उसे सुनो– तथा हे देवि! जिस मन्त्र को मैं बताऊंगा, उस मन्त्र को न जानकर सूर्य ग्रहण में जो मनुष्य कुछ भी जपेगा, उसकी सब प्रकार के कार्यों में हानि होगी और अन्त में वह नरक को प्राप्त करेगा॥1–2॥

शृणु मन्त्रं वरारोहे प्रशस्तं पर्वदर्शने।
मोक्षकाले च चार्वङ्गि! प्रशस्तं यत् शृणुष्व तत्॥3॥
॥ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ॐ॥
प्रणवत्रयमुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत्।
ततः प्रणवमुद्धृत्य मायाबीजं सुमद्धरेत॥4॥

अतः हे वरारोहे! ग्रहण काल में जो प्रशस्त मन्त्र है, उसको सुनो तथा हे सुन्दर अंगों वाली पार्वति! मोक्षकाल में जो प्रशस्त मन्त्र है, उसको सुनो। वह मन्त्र हैं ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ॐ। इसमें तीन प्रणव (ॐ) को सम्यक् प्रकार से लाकर मायाबीज (ह्रीं) को लाना चाहिए और फिर प्रणव ॐ को लाकर मायाबीज को लाना चाहिए। फिर प्रणव (ॐ) को लाकर इन तीनों का लाना अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार यह मन्त्र है ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ॐ। इसमें पहले तीन प्रणव हैं, इसके बाद मायाबीज है, फिर प्रणव है, फिर बीजमन्त्र है, फिर प्रणव है। अन्त में फिर तीनों को नहीं लाया गया है॥3–4॥

विशेष–(क) पाण्डुलिपि में यह मन्त्र ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ॐ ॐ इस प्रकार दिया है। परन्तु मुझे ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ॐ अधिक उचित प्रतीत होता है।

ततः प्रणवमुद्धृत्य त्रयमेतत् सुदुर्लभम्।
एतत् सप्ताक्षरं मन्त्रं प्रजप्य दशधा प्रिये॥5॥

यः पश्येद् ग्रहणं देवि प्रायश्चित्तं न विद्यते।
मोक्षकाले च चार्वङ्गि! देवानामपि दुर्लभम्॥6॥

हे देवि! इस उपर्युक्त सात अक्षर वाले मन्त्र को दश प्रकार पढ़कर जो ग्रहण को देखे, उसको कोई प्रायश्चित नहीं रहता है तथा हे सुन्दरि। मोक्षकाल में यह मन्त्र देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।।5-6।।

मायाबीजत्रयं लिख्यं प्रणवं तदनन्तरम्।
पुनर्मायात्रयं देवि! मन्त्रोद्धारमिदं शुभम्॥7॥
एतन्मन्त्रद्वयं देवि! सर्वत्रैव प्रशस्यते।
वैष्णवेषु च सौरेषु शाक्ते शैवे वरानने!॥8॥
प्रशस्तं चञ्चलापाङ्गि नान्यथा तु कदाचन।
एतन्मन्त्रमविज्ञाय यः पश्येद् ग्रहणं शुभे॥9॥
सर्व तस्य वृथा देवि चान्ते शूकरतां व्रजेत्।
दर्शने मोक्षणे चैव मन्त्रद्वयमितीरितम्॥10॥
यन्नोक्तं सर्वतन्त्रेषु चेदानीं प्रकटीकृतम्।
न तिथिर्न व्रतं होमो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥11॥
ग्रासादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
यथा बाह्ये महेशानि तथा चैवान्तरात्मनि॥12॥

अब शंकर भगवान् शुभ मन्त्रोद्धार को बताते हुए कहते हैं कि हे देवि। तीन माया बीज लिखकर अर्थात् (ह्रीं ह्रीं ह्रीं) यह लिखकर उसके प्रणव (ॐ) लिखना है, फिर उसके बाद फिर तीन मायाबीज (ह्रीं ह्रीं ह्री) लिखना है। अत: पूरा मन्त्र हुआ 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं'। यही शुभ मन्त्रोद्धार मन्त्र है।

हे सुन्दर मुख वाली देवि! ये दो मन्त्र सभी स्थानों पर प्रकृष्ट रूप से कहे जाते हैं। हे चंचल नेत्रों वाली! वैष्णव, सौर, शाक्त और शैव इन सब सम्प्रदायों में यह मन्त्र प्रशस्त है, इसके अलावा अन्य कुछ नहीं है।

हे पार्वति! इस मन्त्र को जो नहीं जानता है, वह यदि ग्रहण को देखे तो हे देवि! उसके सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं और अन्त में वह व्यक्ति सूअर की योनि को प्राप्त करता है।

ग्रहण के दिखाई देने पर और उसके समाप्त हो जाने पर ये दो ही

मन्त्र बताये गये हैं, जो सब तन्त्रों में नही कहा गया है, वह इस समय प्रकट कर दिया गया है।

सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के समय न तिथि होती है, न कोई व्रत होता है और न होम होता है अर्थात् उस समय कोई विशेष पूजा पाठ का समय नहीं होता है। फिर भी जव सूर्य अथवा चन्द्रमा को राहु ग्रसे, तव से जव वे छोड़ें, तब तक अर्थात् ग्रहण प्रारम्भ होने से अन्त तक मनुष्य को अन्यत्र बुद्धि न लगाकर जप करना चाहिए।।7-12।।

उभयोरेकतां कृत्वा प्रजपेन्मनसा शुचिः।
राहुर्यदा महेशानि चन्द्रं सूर्यं च धावति।।13।।
वैरभावमनुस्मृत्य विकलाङ्गस्तुं पार्वति!।
तदोपरागो भवति सर्वयोगमयं विदुः।।14।।
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा गङ्गाद्यास्तीर्थकोटयः।
सूर्यमण्डलमासाद्य प्रजपेदिष्टमन्त्रकम्।।15।।

भगवान् ने कहा कि हे पार्वति! जिस प्रकार बाहरी मन में उसी प्रकार अन्तर्मन में दोनों में एकता करके पवित्र मन से जप करना चाहिए।

हे महेशानि! जब राहु सूर्य और चन्द्रमा के पीछे दौड़ता है, तब (उस समय) वैर भाव को यादकर विकलांग व्यक्ति भी उसके उपराग युक्त तथा सब प्रकार के योगमय हो जाता है तथा हे पार्वति! जिस समय ग्रहण पड़ता है, उस समय ब्रह्मा आदि सभी देवता गंगा आदि सभी करोड़ों तीर्थ सूर्यमण्डल में पहुंचकर इष्ट मन्त्र का जप करते हैं।।13-15।।

अतिरिक्त पाठ है, उसका भी अर्थ किया जा रहा है–

अत एव महेशानि इन्द्राद्यास्तिदिवौकसः।
चन्द्र पर्व सूर्य पर्व यदा भवति सुन्दरि।।
स्नानं जनान् त्यक्त्वा त्यक्त्वा ते देवा सूर्यमण्डलम्।
गत्वा शीघ्रं जपेत् विद्यां कालिकां जगदम्बिकाम्।।
अत एव महेशानि सामान्यजनमेव च।
तीर्थोदकं महेशानि सामान्यमुदकं प्रिये!।।

इन श्लोकों में भगवान् शिव पार्वती जी से कहते हैं कि जय सूर्यग्रहण होता है, उस समय इन्द्रादि देवतागण स्नान छोडकर और मनुष्यों को छोड़कर

सूर्य मण्डल में जाकर शीघ्र ही जगदम्बिका, कालिका और विद्या का जाप करते हैं। इसलिए हे महेशानि! सामान्य जन को यह ग्रहण तीर्थोदक है तथा सामान्य उदक है अर्थात् यह सबके लिये है।

त दृष्ट्वा सहसा राहुः पलायति महापदि।
अन्यथा तत्क्षणात् सर्वं ब्रह्माण्डं नाशमाप्नुयात्।।16।।

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! सूर्यमण्डल में आये हुए उन ब्रह्म आदि देवों को देखकर सहसा राहु महा आपत्ति में पड़ जाता है और भाग जाता है। यदि ऐसा नहीं होता तो देवता लोग सूर्यमण्डल में नहीं जाते तो उसी क्षण समस्त ब्रह्माण्ड नाश को प्राप्त हो जाता।।16।।

तत्क्षणे सर्वतीर्थानि सामान्यमुदकं प्रिये।
यान्ति स्वपदमृत्सृज्य सर्वतीर्थोदकं ततः।।17।।
सामान्यमुदकं तनु गङ्गातोयसमं भवेत्।
तत्क्षणे चञ्चलापाङ्गि तज्जले स्नानमात्रतः।।18।।
चर्तुभुजसमाः सर्वे लोका भारतवासिनः।
तत्क्षणाद् गिरिजे सत्यं मोक्षं ब्रह्मपुरं व्रजेत्।।19।।

हे प्रिये! उस क्षण में सब तीर्थ और सामान्य जल अपने पद स्थान को छोड़कर सब तीर्थो के जल में मिल जाते हैं और सामान्य जल गङ्गा के जल के समान हो जाना चाहिए। अर्थात् जब सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण पड़ता है, उस समय सभी सामान्य जल गङ्गा के जल के समान हो जाते हैं। अतः हे चञ्चल नेत्रों वाली पार्वति! उस जल में स्नान मात्र से समस्त भारतवासी विष्णु के समान उसी क्षण मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्मपुर को चले जाने चाहिए।।17-19।।

विशेष–इस कथन में वास्तविकता है। इतना तो अवश्य है ग्रहणकाल में प्रकृति में कुछ परिवर्तन तो अवश्य दिखायी देता है। हो सकता है कि उसका प्रभाव नदियों के पानी पर पड़ता हो। अतः उस समय स्नान से अवश्य लाभ होता होगा। अतः इसे कोरी कल्पना ही नहीं समझनी चाहिये।

भारते त्रिविधा पूजा भारते विविधो जपः।
तथापि बहुकालेन सिद्ध्यन्ते सङ्गदोषतः।।20।।

भारत में तीन प्रकार की पूजा बतायी गयी है और भारत में अनेकों प्रकार के जप कहे गये हैं, फिर भी बहुत अधिक समय में सङ्गदोष से कार्य सिद्ध होते हैं।।20।।

मान्दातृप्रमुखाः सर्वे रामो दाशरथिस्तथा।
प्रजप्य तारिणीं दुर्गां मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयुः॥21॥

मान्धाता आदि प्रमुख राजा तथा दशरथ पुत्र राम ने तारिणी दुर्गा का जप करके मन्त्रसिद्धि प्राप्त की।।21।।

अन्यद्वीपेषु वर्षेषु नानातीर्थानि सन्ति च।
नानाभोगयुता लोका देववत् सर्वथा प्रिये॥22॥

अन्य द्वीवों और देशों में अनेको तीर्थ हैं।अतः हे प्रिये! अनेकों भोगों से युक्त लोग सब प्रकार से देवता के समान हैं।।22।।

ते सर्वे देवताप्राया नानाभोगविलासिनः।
नित्यसुखमयाः सर्वे दिव्यस्त्रीशतसेविताः॥23॥

वे सभी देवता प्रायः अनेकों प्रकार के भोग विलासों में लगे रहते हैं। अतः वे सभी नित्य सुखमय रहते हैं और नित्य सैकड़ों दिव्य स्त्रियों से सेवित रहते हैं। अर्थात् सैकड़ों सुन्दरियां उनकी सेवा करती हैं।।23।।

तेषां गेहे महेशानि! नानातीर्थानि सन्ति वै।
ग्रहणं चन्द्रदेवस्य सूर्यदेवस्य सुन्दरि!॥24॥

शंकर जी पार्वती से कहते हैं कि हे महेशानि! उन अन्य द्वीपों के पुरुषों के घर में अनेको तीर्थस्थान हैं तथा हे सुन्दरि! वहाँ चन्द्रदेव और सूर्यदेव का ग्रहण पड़ता रहता है।।24।।

बहुभाग्येन चार्वङ्गि! लोका भारतवासिनः।
प्राप्तिमात्रेण यज्जप्तं तत्सर्वमक्षयं भवेत्॥25॥

हे सुन्दर शरीर वाली पार्वति! बहुत बड़े भाग्य से भारत में रहने वाले लोग चन्द्र और सूर्य ग्रहण प्राप्त कर पाते हैं। सूर्य-चन्द्रग्रहण के प्राप्ति मात्र से जो जल है, वह सब अक्षय हो जाता है अर्थात् सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण पड़ते समय जो जल ग्रहण देखता है, वह जल बहुत गुणकारक हो जाता है, इसमें अवश्य कुछ वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है।।25।।

चतुर्दशी पौर्णमासी सोममङ्गलसंयुता।
यदा भवति लोकेऽस्मिन् तदा सूर्यग्रहेण किम्॥26॥

अब शंकर पार्वती से कइते है कि पार्वति! चतुर्दशी और पूर्णमासी सोमवार और मंगलवार को पड़ जाय और उसी समय चन्द्रग्रहण हो, तो उसके

समक्ष सूर्यग्रहण भी कोई महत्त्व नहीं रखता अर्थात् यदि सोमवार को चतुर्दशी मंगलवार को पूर्णिमा हो जाये तो चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहण से अधिक गुणकारी होता है। हे चञ्चल नेत्रों वाली पार्वति! यह चौदश, पूर्णिमा तो करोड़ों सूर्यग्रहणों के समान पुण्यदायक होता है।।26।।

विशेष–उपर्युक्त कथन में अवश्य कुछ वैज्ञानिक रहस्य हो सकता है, उस समय चन्द्रमा की किरणों में कोई ऐसा औषधीय गुण हो कि उन किरणों के जल में पड़ने पर कुछ विशेष गुण उत्पन्न होता हो। इसलिए जब भी सोमवार की चतुर्दशी और मंगलवार की पूर्णिमा हो, तो अवश्य गङ्गास्नान करना चाहिए गङ्गा का ही नहीं किसी भी नदी का स्नान लाभदायक होगा; क्योंकि उन दिनों खुले स्थान पर बहने वाली सभी नदियों में सूर्य की किरणें पड़ेंगी ही। अतः किसी भी नदी में स्नान लाभदायक सिद्ध हो सकता है। गङ्गा स्नान का महत्त्व इसलिए अधिक है कि यह पहाड़ से आती हुई अनेकों औषधियों और खनिजों के गुणों को लेकर आती हैं। यमुना भी आती हैं; परन्तु आज भगवान् कृष्ण की पवित्र नदी यमुना को तो लोगों ने इतना गन्दा कर दिया है कि उसमें स्नान तो क्या? उस जल को देखना भी अच्छा नहीं लगता। यही हाल पवित्र नदी गङ्गा का है, परन्तु उसके जल में अभी कुछ बचा है। हरिद्वार में गङ्गा का जल विशुद्ध है। अतः वहाँ स्नान सबसे लाभदायक सिद्ध होगा। अगर कोई ग्रहणकाल के बाद अथवा सोम, मंगल को होने वाली चतुर्दशी, पूर्णिमा को हरिद्वार के पवित्र जल में स्नान करेगा तो वह अवश्य उस लाभ को प्राप्त करेगा। यही नहीं सभी नदियों में जहाँ के जल में शहरों की गन्दगी नहीं बह रही है, वहाँ के जल में स्नान करना उक्त अवसरों पर अवश्य लाभप्रद होगा। श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया है कि सोम,मंगल को होने वाली चतुर्दशी–पूर्णिमा में स्नान जपादि का फल करोड़ो सूर्यग्रहण के समान होता है।

एषा तु चञ्चलापाङ्गि! कोटिसूर्यग्रहैः समा।
शुक्लाष्टम्यां नवम्यां वा चतुर्दश्यां तथैव च।।27।।

शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी उसी प्रकार चतुर्दशी और संक्रान्ति तथा ग्रहणकाल में पूजा का लोप नहीं करना चाहिए अर्थात् इन दिनों में पूजा अवश्य करनी चाहिए। संक्रान्ति का अर्थ है–प्रत्येक माह की 14 तारीख को एक राशि की संक्रान्ति होती है। जहाँ सूर्यदेव प्रत्येक राशि में क्रमशः संक्रमण करते हैं। अतः उस काल में पूजा अवश्य करनी चाहिए।।27।।

संक्रान्त्यां पर्वदिवसे पूजालोपं न कारयेत्।
नावश्यं पूजयेद् यस्तु तत्त्वहीनो भवेत् प्रिये!॥28॥
तत्त्वहीनस्य देवेशि! जपयज्ञादि निष्फलम्।
शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्महत्या पदे पदे॥29॥

भगवान् शंकर कहते हैं कि हे पार्वति! उक्त अवसरों पर पूजा करनी चाहिए। जो उक्त अवसरों पर पूजा नहीं करता, वह तत्त्वहीन हो जाता है अर्थात् जप तप सिद्धि इन्ही उपर्युक्त अवसरों पर करनी चाहिए जो इन अवसरों पर न करके अन्य अवसरों पर करता है, उसकी पूजा अवश्य तत्त्वहीन हो जाती है तथा हे देवेशि! तत्त्वहीन पुरुष केजप-यज्ञ आदि सब निष्फल होते हैं। उस पर शाम्भवी (दुर्गा माँ) क्रोधित हो जाती हैं और पद-पद पर उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगता है॥28-29॥

यद् यत् पूर्वकृत् कर्म जपहोमादिकं च यत्।
तत् सर्वं नाशमायाति मम तुल्यो भवेद् यदि॥30॥

शंकर जी कहते हैं कि यदि जो व्यक्ति उक्त अवसरों पर जप-होम आदि नहीं करता और मेरे समान हो जाता है, जैसे मैं कुछ नहीं करता, वैसे ही वह नहीं करता है तो सब कर्मनाश को प्राप्त हो जाते हैं॥30॥

चन्द्रसूर्यग्रहे देवि! न चन्द्रं गणयेत् प्रिये!।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा शूद्रश्च पार्वति!॥31॥

शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवि! हे प्रिये! सूर्य और चन्द्रग्रहणकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह नहीं गिनना चाहिए। अर्थात् सभी को जपादि करने चाहिए॥31॥

विशेष– श्लोक में न चन्द्रं गणयेत् प्रिये! पाठ है, जो उचित नहीं लगता है तथा अर्थ का सामंजस्य भी नहीं बनता है। अत: यहाँ चेदं होना चाहिए, तभी उचित अर्थ हुआ है तथा यह अर्थ सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी उचित प्रतीत होता है॥

सूर्यग्रहणकालाद्धि नान्यःकालः प्रशस्यते।
स कालः परमेशानि! परंब्रह्मस्वरूपवान्॥32॥

सूर्यग्रहण के काल के समान अन्य काल अधिक प्रशंसनीय नहीं है अर्थात् सूर्यग्रहण काल के समान अन्य कोई काल अच्छा नहीं है, वह काल हे पार्वति! परब्रह्म के स्वरूप के समान पवित्र है॥32॥

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य न जपेद् यदि दीक्षितः।
सर्वं पुण्यं परित्यज्य विष्ठायां जायते कृमिः॥33॥
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं ग्रहणे जपपूजनम्।
न तिथिर्नाम गोत्रं वा न च संकल्पमाचरेत्॥34॥

सूर्य और चन्द्रग्रहण के समय यदि कोई दीक्षित जप और पूजन नहीं करता है तो वह सब पुण्य छोड़कर विष्ठा के कीड़ा के रूप में जन्म लेता है। अर्थात् दूसरे जन्म में विष्ठा का कीड़ा बनता है। इसलिए ग्रहण के समय यत्नपूर्वक जप पूजन करना चाहिए, उस समय न तिथि का न नाम का अथवा न गोत्र का विचार करना चाहिए।।33-34।।

कलिकाले तु देवेशि! यवना बलवत्तमाः।
मत्स्यमांसरताः सर्वे सर्वदा मद्यसेविनः॥35॥
अनाचाररतास्ते न सिद्ध्यन्ति यवनाः कलौ।
यवनानां महेशानि त्र्यक्षरीं ब्रह्मरूपिणीम्॥36॥
निगदामि वरारोहे सावधानाऽवधारय।

अब भगवान् शंकर कहते हैं कि हे देवेशि! पार्वति! कलियुग में तो यवन (मुसलमान और ईशाई) ही सबसे अधिक बलवान् हैं, वे सभी सदा मछली और मांस खाने में शराब पीने में मस्त रहते हैं। वे सब अनाचार (भ्रष्टाचार, अत्याचार) करने में लगे रहते हैं। इसलिए कलियुग में यवन सिद्धि प्राप्त नहीं करते। हे महेशानि! यवनों की ब्रह्मरूप वाली तीन अक्षरों वाली देवी है। उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ। अतः हे वरारोहे! तुम सावधान होकर सुनो।।35-36।।

कलावतीं समुद्धृत्य वज्रिणी तदनन्तरम्॥37॥
रतिबीजं ततो देवि! ततस्तु रुद्रयोगिनीम्।
एषा तु त्र्यक्षरी विद्या भवनेषु प्रतिष्ठिता॥38॥
संयुक्तौषा यदा विद्या तदैवैकाक्षरी भवेत्।
साचारा ब्राह्मणाद्यास्तु सिद्ध्यन्ति बहुकालतः॥39॥
अनाचाराः प्रणश्यन्ति सत्यमेतन्न संशयः।

उस त्र्यक्षरी विद्या में कलावती को उद्धृत कर उसके बाद वज्रिणी है, उसके बाद रति बीज रुद्रयोगिनी है। इस प्रकार त्र्यक्षरी विद्या तीन लोकों में

प्रतिष्ठित हैं तथा जब यह विद्या संयुक्त अक्षरों वाली हो जाती है, तब यह एकाक्षरी हो जाती है। जो ब्राह्मणादि सदाचारी होते हैं, वे बहुत समय से सिद्ध करते हैं तथा वे सिद्ध पुरुष होते हैं तथा जो अनाचारी (अत्याचारी) होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।37-39।।

उपाया ब्राह्मणादीनां तेनोक्ताः शतशो मया।।40।।
सिद्ध्यन्ति ते यथोक्तेन नियमैश्च यथाविधि।
इति ते कथितं देवि! रहस्यं परमाद्भुतम्।।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदि तेऽस्ति दया मयि।।41।।

।।इति श्री मायातन्त्रे सप्तमः पटलः।।

❖ ❖ ❖

अतः हे देवि! मैंने ब्राह्मण आदि के सैकड़ों उपाय तुम्हें बताये हैं, वे ब्राह्मणादि जैसे मैंने नियम बताये हैं, उन नियमों से यथाविधि कार्य करें तो अवश्य सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हे देवि! मैंने तुम्हें परम आश्चर्यजनक रहस्य बताया है। अतः कृपया इस रहस्य को किसी को भी मत बताना।।40-41।।

।।इस प्रकार मायातन्त्र में सातवां पटल समाप्त हुआ।।

अथाष्टमः पटलः

श्रीदेवी उवाच

कथितः परेशान! मन्त्रयन्त्रस्त्वनेकधा।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि साधनं परमेश्वर!॥
पुरश्चर्याविधिं देव! कथयस्वानुकम्पया॥1॥

श्रीदेवी पार्वती ने शंकर जी से कहा कि परमेशान! महादेव! आपने इस समय मुझे अनेक प्रकार के मन्त्र-यन्त्र बताये हैं। अब मैं हे परमेश्वर! अब साधन सुनना चाहती हूँ। अतः हे देव! मुझे कृपया सिद्धि करने की प्रक्रिया वताने की कृपा करें॥1॥

श्रीमहादेव उवाच

गोपितं सर्वतन्त्रेषु विश्वसारे प्रकाशितम्।
तत्रैव गुह्यं यद् यत् ते कथयामि श्रृणुष्व तत्॥2॥

श्री महादेव ने कहा कि हे देवि! विश्वसार में प्रकाशित सब तन्त्रों में गोपित जो गूढ़ तत्त्व हैं, उसे में तुम्हें कह रहा हूँ, उसे तुम सुनो॥2॥

पृथिवीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्त्रं यदि नित्यशः।
जपेदेकाग्रमनसा कुलपूजारतः सुधीः॥3॥
आषोडशदिनं यावद् वाक्पतिर्भवति ध्रुवम्।

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! यदि सुबुद्धि रखने वाला साधक पृथ्वी को मरणशील मानकर एकाग्रचित्त होकर जप करे तो सोलह दिन में ही वाक्पति हो सकता है। वाक्पति अर्थात् वाणी का स्वामी। उसके मुख से जो भी वाणी निकल जायेगी, वह सत्य होकर रहेगी॥3॥

मधुपानरतो रात्रौ चन्द्रबिम्बं प्रचक्ष्य च॥4॥
पुनःपुनः साधकाग्र्यो भवेत् कविवरः क्षणात्।

शंकर जी ने कहा कि हे पार्वति! यदि मदिरापान किया हुआ कोई साधक रात्रि में चन्द्र बिम्ब को देखकर पुनः-पुनः साधना करे तो क्षण भर में श्रेष्ठ कवि हो जाना चाहिए॥4॥

मर्दयन् गिरियुगं देव! तत आलिङ्ग्य यत्नतः॥5॥
एवमष्टोत्तरशतं कृत्वा धनपतिर्भवेत्।

आगे बताते हैं कि पार्वति! यदि साधक कुलपूजा में उपस्थित सुन्दरी

के दोनों स्तनों का मर्दन करता हुआ यत्नपूर्वक आलिङ्गन करे तथा ऐसा यदि 108 बार करे तो धनपति (कुबेर) अर्थात् अथाह दौलतवाला हो जाना चाहिए।।5।।

कुण्डगोलोद्भवं पुष्पं समादाय प्रयत्नतः।।6।।
निवेदयेन्महादेव्यै प्रसीदेति क्रमाचरेत्।
शताभिमन्त्रितं कृत्वा होमयेदखिलं जगत्।।7।।
क्रोधे कालमयो नित्यं दाने वासववत् प्रिये।
बृहस्पतिसमो वक्ता कामवत् कामिनीषु च।।8।।
किमन्यैर्बहुधालापैः स शिवो नात्र संशयः।

हे देवि! यदि कोई साधक कुलपूजा क्रम में कुण्डगोल से उत्पन्न हुए पुष्प को लेकर अर्थात् स्त्री की योनि से निकलने वाले रज को लेकर महादेवी को निवेदन करे कि हे महादेवी प्रसन्न हो जाओ। इस प्रकार यह सब क्रम से करे, उसके बाद 100 बार उसको अभिमन्त्रित कर उस रज का होम करे तो वह समस्त संसार में क्रोध में नित्यकाल के समान और दान में इन्द्र के समान हो जाना चाहिए तथा वह वृहस्पति के समान वक्ता और कामनियों में कामदेव के समान हो जाना चाहिए। बहुत बोलने से क्या देवि! वह साधक शिव ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।6-8।।

कुलपूजाविधियुतो ध्यात्वा च परमेश्वरीम्।।9।।
अयुतं यदि जप्त्वैवं कुमारीं भोजयेत् ततः।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् भवेत् सर्वजनप्रियः।।10।।

शंकर जी कहते हैं कि हे देवि! कुलपूजा विधियुक्त साधक परमेश्वरी का ध्यान करके इसी प्रकार अर्थात् सम्भोगरत रहते हुए अयुत (10000) बार जप करे और उसके बाद कुमारी को भोजन कराये, उसके बाद गुरु को दक्षिणा दे तो वह सभी लोगों का प्रिय हो जाना चाहिये।।9-10।।

विशेष—यहाँ यह कौलाचार का वर्णन है, जो सबको ग्राह्य नहीं है।

प्रतिपद्दिनमारभ्य जपेत् प्रतिपदन्तरम्।
सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा जप्त्वा च परमं मनुम्।।11।।
शक्त्याऽनुज्ञां गृहीत्वा च रिपून् हत्यान्न संशयः।

प्रतिपदा (एकम) के दिन से आरम्भ करके प्रतिपद (एकम) के दिन

तक एक हजार बार हवन करके और परममनु का जप करके शक्ति की अनुमति लेकर शत्रु को मार सकता है, इसमे कोई सन्देह नहीं है।।11।।

प्रातः प्रातः पिबेत् तोयमष्टोत्तरशतं जपेत्॥12॥
अनेन मूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत् तथा।
अनेन जपपानेन साक्षाद् वाक्पतिसन्निभः॥13॥
जायते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः।

प्रातः काल ही जल पिये और 108 बार जप करे तो उससे मूक (गूंगा), दुष्ट आत्मा तथा पत्थर के समान जड़ व्यक्ति साक्षात् वाक्पति (वृहस्पति) के समान हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।12-13।।

लक्षं जप्त्वा ततो ध्यात्वा त्रैलोक्यवशकारिणीम्॥14॥
शत्रुतो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा।
न तस्य विद्यते भीतिः कदाचिदपि सुव्रते॥15॥
वश्या भवन्ति सर्वेऽपि देवतापि च शङ्करि!।

तीनों लोकों को वश में करने वाली देवी का एक लाख बार जाप कर उसके बाद ध्यान करने वाले को व्यक्ति न शत्रु से भय रहता है, न राजा से रहता है और न चोर से भय रहता है तथा हे शङ्करि! सभी देवता भी उसके वश में हो जाते हैं।।14-15।।

ध्यात्वा हृतपद्ममध्ये यो दुर्गां त्रैलोक्यमोहिनीम्॥16॥
जपेदयुतसाहस्रं वृष्टिमाप्नोत्यसंशयः।

हृदय कमल के मध्य में तीनों लोकों को मोहित करने वाली दुर्गा का ध्यान करके जो अयुत (10000) हजार जप करे तो वह निःसन्देह वर्षा को प्राप्त करता है अर्थात् वर्षा हो जाती है।।16।।

मालती-मल्लिका-जाती-कुसुमैर्मधुमिश्रितैः॥17॥
धृतैस्तु हवनाद् देवि! वागीशत्वं प्रजायते।
मूकस्यापीह मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा॥18॥

मालती मल्लिका जाति के फूलों से मधु मिश्रित घृत से हवन करने से मूढ तथा पत्थर तुल्य मनुष्य में वागीशत्व पैदा हो जाता है अर्थात् उसमें उच्चतम वक्तृत्वकला आ जाती है।।17-18।।

जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः॥19॥

घी के साथ जपा (जवासे) के फूलों से और घी से युक्त करवीर (करौंदा) के फूलों से हवन करने से मन्त्री तीनों लोक के निवासियों को मोह ले सकता है।।19।।

विशेष–करवीर कनेर को भी कहा जाता है।

कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि।
हवनान्मदनो देवि! मन्त्रिणा विजितो भवेत्।।20।।

शङ्कर जी ने कहा कि हे देवि! कपूर, कुङ्कुम और कस्तूरी से हवन करने से मन्त्री द्वारा कामदेव भी जीत लिया जाना चाहिए।।20।।

सौभाग्येन विकासेन सामर्थ्येनापि सुव्रते!।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्।।21।।
प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम्।
श्रीखण्डं गुग्गुलं चन्द्रमगुरुं होमयेत् ततः।।22।।
नागेन्द्रासुरदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत्।
सर्वलोकवशास्तस्य भवत्येव न संशयः।।23।।

शंकर जी ने कहा कि हे सुन्दर व्रत वाली पार्वति! सौभाग्य से, विलास से और अपने सामर्थ्य से चम्पक के तथा पाटल (गुलाब) के फूलों से हवन करके मनुष्य अत्यन्त उत्तम लक्ष्मी (धन-दौलत) को प्राप्त करता है और उस मन्त्र का जाप करने वाले द्वारा इस विशाल भूमण्डल को स्तम्भित कर देना चाहिए। अर्थात् वह भूमण्डल को स्तम्भित कर सकता है। श्रीखण्ड (मिश्री) गुग्गुल, चन्द्र (कपूर) अगरु से यदि होम करे तो वह तीनों लोक, नागेन्द्र, असुर, देवताओं और पुरन्ध्री (इन्द्र) को वश में करे अर्थात् उसके वश में सब लोक हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नही है।।21-23।।

लक्षहोमाल्लभेद्राज्यं दरिद्रभयपीडितः।
दुर्गोपशमनं देवि! पलत्रिमधुहोमतः।।24।।

शंकर भगवान् कहते हैं कि हे देवि! गरीवी आने के भय से पीड़ित व्यक्ति यदि एक लाख बार हवन करे तो वह राज्य प्राप्त करे अथवा राजा होगा तथा हे देवि! पलत्रि और मधु से हवन करने से दुर्गा मां की शान्ति होती है।।24।।

विशेष–पलत्रि शब्द कोश में नहीं है; परन्तु पल शब्द का अर्थ मांस

तव पलत्रि का अर्थ होगा—तीन मांस। अतः अर्थ होगा कि तीन प्रकार के मांस और मधु (मदिरा)।

रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः।
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः॥25॥
परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्मरणं भवेत्।

बकरे के रुधिराक्त मांस और मधुर इन तीनों होम करने से द्वारा रात्रि में गुरु द्वारा बताये गये तरीके से दूसरे देश के समस्त महादुर्ग का स्मरण होवे। अर्थात् ऐसा मनुष्य दूसरे देश के दुर्ग को भी जीत सकता है।।25।।

गोक्षीरं मदुदध्याज्यं पृथग् हुत्वा वरानने॥26॥
आयुर्धनं महारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम्।

गाय के दूध,दही और घी से अलग-अलग होम करके सुमुखि पार्वति! मनुष्यों को आयु, धन महान् आरोग्य और समृद्धि हो जाती है।।26।।

क्रमेणाब्जेन गोक्षीरमधुभ्यां मूलनाशनम्॥27॥
दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यधनमाप्नुयात्।
शीतया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः॥28॥
होमो दधिमधुक्षीरलाजैश्च वीरवन्दिते।
रोगहन्ता कालहन्ता मृत्युहन्ता न संशयः॥29॥
कमलैर्वरुणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिकारक;।
रक्तोत्पलं जगद्वश्यं राजानश्च वशाः क्षणात्॥30॥
नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा।
श्वेतोत्पलैः प्रियं राज्यं लभते हवनात् प्रिये॥31॥

क्रमशः कमल से तथा गाय के दूध से और मधु से हवन करने से मूलनाशन होता है। दही और माक्षिक (मधु) द्वारा होम करने से सौभाग्य और धन प्राप्त करे। केवल शीत (कपूर) द्वारा होम करने से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है। दही, मधु, खीर और खीलों से किया गया होम रोग को नष्ट करने वाला, बुरे समय को नष्ट करने वाला और मृत्यु का नाश करने वाला होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कमल और वरुणों से किया गया होम सम्पत्ति कारक होता है। लाल कमल से किया गया हवन संसार को वश में करने वाला होता है और इससे क्षणभर में राजा वश में हो जाते हैं। नील कमलों से हवन करने से महान् दुष्ट लोग वश में हो जाते हैं। इसमें कुछ भी

अन्यथा नहीं है तथा हे प्रिये! श्वेत कमलों से हवन करने से मनचाहा राज्य मिलता है।।27-31।।

विशेष—शीत, कपूर, दालचीनी, नीलवृक्ष और जल को भी कहा जाता है।

अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन प्रपूजिताम्।
समाश्रित्य जपेद् विद्यां लक्षमात्रं सदा प्रिये।।32।।
योधितो भ्रामयत्येव मनस्तस्य सुनिश्चितम्।
तदा द्वितीयलक्षं तु जपेत् साधकसत्तमः।।33।।
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम्।
तासां कटाक्षजालैस्तु सम्मोहयन्ति साधकम्।।34।।

शंकर भगवान् ने कहा कि हे पार्वति! रुद्राक्ष की माला से भलीभांति पूजा करके चन्दन से अच्छी तरह पूजित विद्या का सहारा लेकर एक लाख बार जप करे तो युद्ध करता हुआ व्यक्ति अपने शत्रु के मन को भ्रमित कर देता है, जिससे शत्रु पराजित हो जाता है तथा जब दो लाख बार जप करे तो श्रेष्ठ साधक पाताल, पृथ्वीतल तथा नागेन्द्र कन्यायें उसको चाहने लगती हैं, वे अपनी तिरछी निगाहों से साधक को सम्मोहित कर लेती हैं।।32-34।।

तदा लक्षत्रयं जप्यात् साधकःस्थिरमानसः।
तृतीयलक्षे संजप्ते भ्रामयन्ति पुराङ्गनाः।।35।।
अतिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमतकारिणा।
साधको भ्रामयत्येव तत्रासौ स्थिरमानसः।।36।।
तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम्।
एवं लक्षत्रये जप्ते साधकः स्थिरमानसः।।37।।
सम्मोहयन्ति स्वर्लोकं भूर्लोकतलवासिनः।
पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरजनाः प्रिये।।38।।

ऐसा तब होता है, जब कि 3 लाख बार यदि स्थिर मन से साधक जप करे तो 3 लाख बार जप करने पर पुराङ्गना (नगर की स्त्रियां) भ्रमित हो जाती हैं। अर्थात् पुराङ्गना उस पर मोहित हो जाती हैं। उस समय वहाँ स्थिर चित्तवाला साधक 3 लाख बार जप करता है। इस प्रकार 3 लाख बार जप करने पर स्थिर मन वाला साधक भूलोक, स्वर्गलोक और पाताल के वासियों को भी सम्मोहित कर लेता है और तब इन लोकों के पुरुष और

स्त्रियां वश में हो जाती है और चेतन और जड़ तथा मनुष्य भी वशीभूत हो जाते हैं।।35-38।।

विशेष—मेरी समझ में यह सब पाखण्ड है तथा यही व्यक्ति करता रहे तो अवश्य उसके विपरीत फल को प्राप्त करेगा; क्योंकि 3 लाख जाप करने का मतलब है कि यही सब करता रहे तथा विकास का कोई कार्य न करे। आज इस विज्ञान के युग में यह सब निरर्थक हो सकता है। हो सकता है यह कभी सार्थक रहा हो।

गोरोचनादिद्रव्यैश्च चक्रराजं समालिखेत्।
वन्द्यां वसुन्धरां रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां पराम्।।39।।
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम्।
चिन्तयेत् तु ततो देवीं योजनानां सहस्रतः।।40।।

शंकर भगवान् ने कहा कि हे प्रिये! गोरोचन आदि द्रव्यों से यदि कोई साधक श्रीचक्र को वन्दनीय रम्य पृथ्वी पर लिखे, उसके मध्य में परा प्रतिमा स्थापित करे, वह प्रतिमा जलती हुई नामबीज के सहित तथा महाबीज मन्त्र से युक्त होनी चाहिए। उसके बाद दुर्गा देवी का सहस्रों योजन से चिन्तन करे।।39-40।।

या दृष्टपूर्वा देवेशि क्रमशोऽत्र सुदुर्लभा।
राजकन्याऽथवा भार्या भयलज्जाविवर्जिता।।41।
आयाति साधकं सम्यग् मन्त्रमूढा सती प्रिये।
चक्रमध्यगतो भूयः साधकश्चिन्तयेत् सदा।।42।।

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! जिसको पहले से देखा हो, जिसको क्रमशः यहाँ आना बहुत ही दुर्लभ हो अर्थात् जो नहीं आ सकती है, वह चाहे राजकन्या हो अथवा अपनी पत्नी हो तथा भय और लज्जा रहित हो, वह मन्त्र से मोहित होकर साधक के पास चली आयेगी। उसको श्रीचक्र के मध्य रखकर साधक को सदा चिन्तन करना चाहिए।।41-42।।

उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणं तथा।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत् परेश्वरि!।।43।।

शंकर जी ने कहा कि हे परमेश्वरि! उस समय निकलते हुए सूर्य की आभा के समान अपने को अरुण हुए साध्य का सदा चिन्तन करना चाहिए

अर्थात् साधक को साधना काल में स्वयं को और साध्य देवी को उदयकालीन आभा के समान कल्पित कर चिन्तन करना चाहिये।।43।।

अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपभाक्।
सर्वसौभाग्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः।।44।।

इस प्रकार क्रमशः करने पर मनुष्य (साधक) स्वयं कामदेव के समान आभा वाला, सब प्रकार से सौभाग्यशाली और सब लोकों को वश में करने वाला हो जाता है।।44।।

सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहितविग्रहः।
चक्रं संपूजयेद् यो हि यस्य नाम विदर्भितम्।।45।।
स भवेद् वासवो देवि! धनाढ्यो वापि भूपतिः।
इदं गुह्यं महेशानि! यदुक्तं तव सन्निधौ।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं प्राणे संशयमागते।।46।।

।।इतिश्री मायातन्त्रे अष्टमः पटलः।।

मुद्रा सहित शरीर वाला जो मनुष्य सभी लाल रंग के पुष्प आदि साधनों से चक्र की सम्यक् प्रकार से पूजा करे और जिसका नाम विदर्भित हो गया है, वह हे देवि! इन्द्र होना चाहिए या बहुत धनाढ्य होना चाहिए अथवा राजा होना चाहिए। अतः हे महेशानि! यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है, जिसको मैंने तुम्हारे सामने कहा है। अतः इसे प्राण संकट आने पर भी किसी को नहीं कहना चाहिए।।45-46।।

विशेष–विदर्भित का आशय यहाँ यह है कि जिसका नाम मिट गया हो।

।।इस प्रकार श्री मायातन्त्र में आठवां पटल समाप्त हुआ।।

अथ नवमः पटलः

श्रीदेवी उवाच

हवनं कुत्र कर्तव्यं विशेषेण वदस्व मे।
समावेदय मे नाथ! यतोऽहं तव वल्लभा॥1॥

श्री पार्वती देवी ने कहा कि हे देव! हवन कहाँ करना चाहिए। यह विशेष रूप से मुझे बताइये। अतः हे नाथ! मुझे सम्यक् प्रकार से समझाओ; क्योंकि मैं तुम्हारी प्राण प्रिया हूँ॥1॥

श्रीमहादेव उवाच

धन्ये प्रियतमे देवि! शृणुष्वावहिता भव।
होमं कुर्यात् कुण्डमध्ये प्रकारं कथयामि ते॥2॥

तब महादेव भगवान् शंकर ने कहा कि हे धन्ये! देवि! ध्यान पूर्वक सुनो कि किस प्रकार कुण्ड के मध्य में हवन करना चाहिए, उसका प्रकार मैं तुम्हें बता रहा हूँ॥2॥

शान्तौ पुष्टौ तथाऽऽरोग्ये कुण्डं च चरुस्त्रकम्।
आकर्षणे त्रिकोणं स्यादुच्चाटे वर्तुलं तथा॥3॥
मारणे च तथा योज्यं वर्तुलं मन्त्रिभिः सदा।

अगर ग्रह अथवा किसी भय की शान्ति करनी हो तथा यदि किसी को नीरोग बनाना हो अर्थात् किसी असाध्य रोग की शान्ति करनी हो या किसी के शरीर को पुष्ट करना हो तो चौकोर कुण्ड बनाना चाहिए। किसी स्त्री या पुरुष को अपने प्रति आकर्षित करना हो, तो त्रिकोण (तिकोना) हवन कुण्ड बनाना चाहिए तथा यदि किसी का उच्चाटन कराना हो तो वर्तुलाकार हवन कुण्ड बनाना चाहिए तथा यदि किसी को मारना हो तब मन्त्र पढ़ने वाले को सदा वर्तुलाकार ही हवन कुण्ड बनाना चाहिए॥3॥

औदीच्यं पौष्टिकै कुण्डं वारुणं शान्तिकादिषु॥4॥
उच्चाटे चानिलं कुण्डं याम्यं च मारणे भवेत्॥
विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद् राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्रं हि शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम्॥5॥
चतुरस्त्रं च सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।
चतुरस्त्रे महेशानि सर्वकर्माणि साधयेत्॥6॥

सर्वाधिकारिकं कुण्डं सर्वदं चतुरस्त्रकम्।
गृहादिकरणे हस्तनियमं कथयामि ते॥7॥
रथादिदोलिका चैव पोतं नाराचमेव च।
मानाङ्गुलेन कर्तव्यं नान्येनापि कदाचन॥8॥

हवनकुण्ड किस दिशा में बनाना चाहिए, यह बताते हुए शंकर जी कहते हैं कि हे पार्वती! पौष्टिक कार्य में उत्तर दिशा में हवनकुण्ड बनाना चाहिए अर्थात् किसी के शरीर को पुष्ट करने के लिए हवन करना हो तो उत्तर दिशा में हवनकुण्ड बनाना चाहिए। ग्रह शान्ति आदि कार्यों में वारुणी (पश्चिम और उत्तर) दिशा के बीच में हवनकुण्ड बनाना चाहिए। उच्चाटन कार्य में आग्नेय (पूर्व और दक्षिण) के मध्य हवन कुण्ड बनाना चाहिए तथा यदि किसी को मारण करना हो तो दक्षिण दिशा में हवन कुण्ड बनाना चाहिए।।4-6।।

अब हवन कुण्ड किस वर्ण के व्यक्ति के लिए किस आकार का बनाना चाहिए यह बताते हैं कि हे पार्वती! ब्राह्मणों का हवनकुण्ड चौकोर होना चाहिए। क्षत्रियों का हवनकुण्ड वर्तुलाकार होना चाहिए। वैश्यों का हवनकुण्ड अर्धचन्द्र के आकार का होना चाहिए तथा शूद्रों का त्र्यस्त्र (त्रिकोण) होना चाहिए तथा हे पार्वति! चौकोर कुछ तान्त्रिक सभी का हवन कुण्ड चौकोर ही चाहते हैं; क्योंकि हे महेशानि! चौकोर हवन कुण्ड द्वारा सब कर्मों से सिद्ध कर देना चाहिए। अर्थात् चौकोर हवनकुण्ड सब प्रकार के कर्मों के लिए सबसे अच्छा है। वह हवनकुण्ड सब सिद्ध कराने वाला तथा सब देने वाला होता है।

अब शंकर जी हाथ का नियम बताते हुए कहते हैं कि हे पार्वति! अब मैं तुम्हें हाथ का नियम बताता हूँ। रथादि दोलिका पोत नाराच ही होना चाहिए। नाप तौल अंगुल से करनी चाहिए। अन्य किसी से कभी नहीं करनी चाहिए।।4-8।।

मुष्ट्यरत्नप्रमाणानि यत् किञ्चित् कथितानि च।
यजमानस्य कर्तव्यो नान्यस्यापि कदाचन॥9॥

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! मैंने जो मुष्टि (मुठी रत्न) प्रमाण बताये हैं, वे सब यजमान को करने चाहिए , अन्य किसी को कभी नहीं करने चाहिए। अर्थात् नाप तौल यजमान के ही हाथ तथा अंगुल से करनी चाहिए। अन्य किसी से कभी नहीं करनी चाहिए।।9।।

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्तरि।
मानं तद् यजमानस्य विदुपामेप निर्णयः॥10॥

हे पार्वति! नाप तौल की क्रिया जो कही गयी है अथवा नाप तौल करने वाले के विषय में जो कहा गया है, वह यजमान के हाथ अंगुल आदि द्वारा ही की जानी चाहिए। अर्थात् नाप तौल हाथ से जो की जाती है, वह निश्चित नहीं है; क्योंकि किसी का हाथ छोटा मोटा होता है, किसी का बड़ा होता है। अतः मान क्रिया यजमान के हाथ की ही होनी चाहिए। अन्य किसी के हाथ की अथवा मन्त्र पढ़ने वाले के हाथ की नहीं होनी चाहिए। ऐसा विद्वानों का निर्णय है।।10।।

चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः।
कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमाङ्गुलिपर्वणः।।11।।

तन्त्र को जानने वाले जानते है कि चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है। इसे यदि नापना है तो कर्ता की मध्यमा अंगुली तक 24 संख्या हो जाती है; फिर दांये हाथ पर गिनना शुरू किया तो मध्यमा अंगुली की अन्तिम गांठ तक 24 संख्या हो जाती है। अतः 24 अंगुल का एक हाथ होता है।।11।।

मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानाङ्गुलमुदाहृतम्।
यवानां तण्डुलैश्चैवाङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत्।।12।।

मध्य अंगुलि की दीर्घता के परिणाम से मान अंगुल उदाहृत है। आठ चावलों के बराबर एक अंगुल होता है तथा आठ जौ के बराबर एक अंगुल होता है।।12।।

अदीर्घायाजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलैः ।
अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्येष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः।।13।।

चाहे हाथ अदीर्घ छोटा हो या बड़ा हो 24 अंगुलों से ही नापना चाहिये। यदि आठ चावल या जौ का एक अंगुल है तो ज्येष्ठ हाथ माना जायेगा तथा यदि सात जौ का अंगुल है तो 24 अंगुल का छोटा हाथ माना जायेगा।।13।।

कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं प्राणवल्लभे।
सहस्त्रे खलु होतव्ये कुर्यादेककरात्मकम्।।14।।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम्।
षट्करो वेदलक्षन्त्वष्टहस्ते दशलक्षकम्।।15।।
दशहस्ते तु कोटिर्वै हस्तसंख्या व्यवस्थिता।
दशहस्तात् परं कुण्डं नास्ति होमो महीतले।।16।।

शंकर भगवान् ने कहा कि हे प्राणप्रिये पार्वति! सबसे छोटा कुण्ड छः अंगुल का होता है, जिसमें 1000 से कम आहुतियाँ होनी चाहिए तथा एक

हजार आहुतियाँ एक हाथ के कुण्ड में होनी चाहिए। दश हजार आहुतियों के लिए दो हाथ का चौकोर हवन कुण्ड होना चाहिए अर्थात् दो हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा चौकोर हवनकुण्ड होना चाहिए तथा एक लाख आहुतियों वाला हवनकुण्ड चार हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा चौकोर होना चाहिए। छः हाथ लम्बा और छः हाथ चौड़ा हवनकुण्ड होना चाहिए तथा एक करोड़ आहुतियों के लिए दश हाथ लम्बा और दश हाथ चौड़ा हवन कुण्ड होना चाहिए और दश हाथ से बड़ा हवनकुण्ड इस पृथ्वी तल पर कोई नहीं है।।14-16।।

एकहस्तमिते देवि लक्षमेकं विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत् तावद्धस्तेन वर्द्धयेत्।।17।।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! पार्वति! एक हाथ लम्वे चौडे गहरे कुण्ड में एक लाख आहुतियों वाला हवन करना चाहिए। ऐसा विधान किया जाता है और 10 लाख आहुतियों के लिए एक हाथ बढ़ाना चाहिए अर्थात् 2 हाथ लम्बे चौड़े और गहरे कुण्ड में 10 लाख आहुतियों वाला होम करना चाहिए।।17।।

नालमेखलयोर्मध्ये पवित्रस्थापनाय च।
यन्त्रं कुर्यात् तथा विद्वान् द्वितीये मेखलोपरि।।18।।

नाल (कमलदण्ड) और मेखला के मध्य में पवित्र स्थापना के लिये प्रयत्न करना चाहिये और द्वितीय में मेखला के ऊपर पवित्र स्थापना के लिये प्रयत्न करना चाहिये। नाभि क्षेत्र को तीन भागों में बांटकर मध्य में कर्णिका को बनाना चाहिए।।18।।

नेत्रवेदाङ्गुलोपेताः कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्।
यवद्वयप्रमाणेन नाभिं पृथगुदाहृतम्।।19।।

नेत्र और वेदाङ्ग अर्थात् दो और चार अंगुलों से युक्त अन्य कुण्डों में बढ़ाना चाहिये तथा दो जौ के प्रमाण से नाभि पृथक् उदाहृत है।।19।।

योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेत्।
नाभिक्षेत्रं त्रिधा कृत्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम्।।20।।

योनिकुण्ड में योनि को कमल कुण्ड में नाभि को छोड़ देना चाहिये। फिर नाभि क्षेत्र को तीन भाग में बांटकर मध्य में कर्णिका करनी चाहिये।।20।।

बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत्।
इन्द्राग्नियमादिक् कुण्डे योनिः सौम्यमुखी स्मृता।।21।।

योनिः पूर्वमुखान्येषु पूर्वैशान्योत्तरा स्मृता।
हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि॥22॥
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्त्रं समन्ततः।
आदाय दक्षिणे पाणौ स्त्रुवं त्रिमधुरं हविः॥23॥
प्राङ्मुखो वह्निजायान्ते जुहुयान्युब्जपाणिना।
नमोऽन्तेन नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विठमेव च॥24॥
पूजायामाहुतौ चापि सर्वत्रायं विधिः शिवे।
एवंप्रकारो देवेशि! कथितो होमनिर्णयः॥
गुह्याद् गुह्यतमो देवि! सुखमोक्षप्रदो नृणाम्॥25॥

॥इति श्री मायातन्त्रे नवमः पटलः॥

कमल के वाहरी दोनों भागों में आठ पत्रों की कल्पना करनी चाहिए। इन्द्र,अग्नि, यम और दिक् कुण्ड में सौम्यमुखी योनि की कल्पना करनी चाहिए।

अन्य कुण्डों में पूर्व को मुख वाली योनि की परिकल्पना करनी चाहिए। पूर्व और ईशानी दिशाओं में उत्तर मुख वाली योनि की परिकल्पना करनी चाहिए।

शंकर जी कहते हैं कि हे देवि! संक्षिप्त होमकर्म में साधक का स्थान) एक हाथ मात्र होना चाहिए और अंगुलियों की ऊंचाई तक एक हाथ का लम्बा और चौड़ा वर्गाकार होना चाहिए।

श्रुव (यज्ञ में घी गिराने का लकड़ी का चम्मच) दांये हाथ में लेकर त्रिमधुर हवि (घी आदि) को पूर्व मुख करके कमल कर से अग्नि उत्पन्न करने के लिए आहुति देनी चाहिए। हवन के अन्त में नमः ऐसा कहना चाहिए। अतः हे शिवे! पूजा में आहुति में सभी जगह यही विधि है। अतः हे देवेशि! यही होम करने का प्रकार है, जिसको मैंने तुम्हें बताया है तथा हे देवि! यह गूढ़ से गूढ़तम प्रकार है और यह मनुष्यों के लिए सुख और मोक्ष को प्रदान करने वाला है।।21-25।।

।।इस प्रकार श्री मायातन्त्र में नौवा पटल समाप्त हुआ।।

अथ दशमः पटलः

श्रीदेवी उवाच

नमस्यामि नमस्यामि देवदेव! महेश्वर!।
इदानीं कथयेशान! मन्त्रसिद्धेस्तु लक्षणम्।।1।।

श्री पार्वती देवी ने भूतभावन भगवान् शंकर से कहा कि हे देवों के देव महादेव! अब आप इस समय मुझे मन्त्रसिद्धि का लक्षण बताइये।।1।।

श्रीमहादेव उवाच

पुरश्चर्याविधिं देवि! इदानीं कथयामि ते।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः पूर्वमुपोषितः।।2।।
जपेदेकाग्रमनसा गायत्रीसंयुतं तथा।
वेद्यां कीलकमारोप्य पूजयेत् कीलकोपरि।।3।।

श्री महादेव ने कहा कि हे देवि! पार्वति! अब इस समय मैं तुम्हें मन्त्रसिद्ध करने की आरम्भ की क्रिया विधि बता रहा हूँ। वह है—सबसे पहले स्नान करना चाहिए, उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए। इस प्रकार पूरी तरह शौचादि क्रिया से पवित्र होकर पूर्व को मुंह करके बैठकर एकाग्र मन से गायत्रीमन्त्र से संयुक्त वेद्या कीलक आरोप कर कीलक के ऊपर पूजन करना चाहिए।।2-3।।

विशेषः—गायत्री संयुक्त कीलक का अर्थ यहाँ गायत्री तन्त्र में जो कीलक कहा गया है, उस कीलक का सर्वप्रथम जाप करना चाहिए। वह गायत्री मन्त्र के अनुसार ही है जैसे कि गायत्री मन्त्र के जितने भी अक्षर हैं। उन अक्षरों से साधक अथवा यजमान के समस्त शरीर की रक्षा की याचना की गयी है, परन्तु मन्त्र वही वेदोक्त है—ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रयोदयात्। इसी मन्त्र के अक्षरों के क्रम से मनुष्य के शरीर के समस्त अंगों की रक्षा की प्रार्थना की गयी है। इसे गायत्री कवच कहा जाता है। यह कवच गायत्री तन्त्र में दिया है। जो इस प्रकार है—

ॐ ॐ ॐ ॐ भूः ॐ ॐ ॐ ॐ भुवः ॐ ॐ स्वः, ॐ ॐ त ॐ ॐ त्स ॐ ॐ वि ॐ ॐ तु ॐ ॐ र्व ॐ ॐ रे ॐ ॐ णि ॐ ॐ यं ॐ ॐ भ ॐ ॐ र्गो ॐ ॐ दे ॐ ॐ व ॐ ॐ स्य ॐ ॐ धी ॐ ॐ म ॐ ॐ हि ॐ ॐ धि ॐ ॐ यो ॐ ॐ यो

ॐ ॐ नः ॐ ॐ प्र ॐ ॐ चो ॐ ॐ द ॐ ॐ या ॐ ॐ त् ॐ ॐ ओम्।

ॐ भूः ॐ पातु मे मूलं चतुर्दशसमन्वितम्।
ॐ भुवः ॐ पातु में लिङ्गं सकलं षड्दलान्वितम्।।

गायत्री मन्त्र का पहला अक्षर है–'भूः' अतः हे देवि! आप 'ॐ भू' मेरे 14 से समन्वित मूल अर्थात् मूलोत्पत्ति की रक्षा करें। 'ॐ भुवः' मेरे समस्त षट्दल से युक्त लिङ्ग की रक्षा करें।

ॐ स्वः ॐ पातु मे कण्ठं साकाशं दलषोडशम्।
ॐ त ॐ पातु मे नित्यं ब्रह्मणः कारणं परम्।।

हे देवि! 'ॐ स्वः' में 16 दल आकाश वाले कण्ठ की रक्षा करें और 'ॐ त' आप मेरे नित्य ब्रह्म के पर कारण की रक्षा करें।

ॐ त्स ॐ पातु में रसं रसनासंयुतं मम।
ॐ वि ॐ पातु मे गन्धं सदा शरीरसंयुतम्।।

'ॐ तत्स ॐ' हे देवि! आप मेरी रसना अर्थात् रस (स्वादु) को ग्रहण करने वाली जिह्वा सहित मेरे रस की रक्षा करें। 'ॐ वि ॐ' हे देवि! आप मेरे शरीर युक्त गन्ध की रक्षा करें।

ॐ तु ॐ पातु मे स्पर्शं शरीरस्य च कारणम्।
ॐ र्व ॐ पातु मे शब्दं शब्दविग्रहकारणम्।।

'ॐ तु ॐ' हे देवि! आप मेरे शरीर के कारण स्पर्श तत्त्व की रक्षा करें। 'ॐ र्व ॐ' हे देवि! आप मेरे शब्दरूप शरीर के कारण शब्द की रक्षा करें।

ॐ रे ॐ पातु मे नित्यं त्वचं शरीररक्षकम्।
ॐ णि ॐ पातु मे अक्षि सर्वतत्त्वैककारणम्।।

'ॐ रे ॐ' हे देवि! आप मेरे शरीर की रक्षक त्वचा की रक्षा करें। 'ॐ णि ॐ' हे देवि! आप मेरे सब तत्त्वों को देखने के कारण रूप नेत्रों की रक्षा करें।

ॐ यं ॐ पातु मे श्रोत्र श्रवणस्य च कारणम्।
ॐ भ ॐ पातु मे घ्राणं गन्धोपादानकारणम्।।

'ॐ यं ॐ' हे देवि! आप मेरे श्रवण के कारण कानों की रक्षा करें। 'ॐ भ ॐ' हे देवि! आप मेरे गन्ध के उपादान कारण नासिका की रक्षा करें।

ॐ र्गो ॐ पातु मे वाक्यं सभायां शब्दरूपिणी (णम्)।
ॐ दे ॐ पातु मे वाहुयुगलं ब्रह्मकारणम्।।

'ॐ र्गो ॐ' हे देवि! आप मेरे सभा में शब्दरूप वाले वाक्य की रक्षा करें ताकि सभा में मेरे मुख से कोई अशुद्ध शब्द न निकले। 'ॐ दे ॐ' हे देवि! आप मेरे ब्रह्म (शक्ति) के कारण भुजाओं की रक्षा करें।

ॐ व ॐ पातु मे पादयुगलं ब्रह्मकारणम्।
ॐ स्य ॐ पातु मे लिङ्गं सजलं षड्दलैर्युतम्।।

'ॐव ॐ' हे देवि! हे ब्रह्म (शक्ति के कारण दोनों पैरों की रक्षा करें। 'ॐ स्य ॐ' हे दवि! आप मेरे छः दलों से युक्त सजल लिङ्ग की रक्षा करें।

ॐ धी ॐ पातु मे नित्यं प्रकृतिशब्दकारणम्।
ॐ म ॐ पातु मे नित्यं परब्रह्मस्वरूपिणी।।

'ॐ धी ॐ' हे देवि! आप हमारे प्रकृति के शव्द रूप कारण नित्य तत्त्व की रक्षा करें। 'ॐ म ॐ' हे देवि! आप मेरे परम ब्रह्म स्वरूप वाले नित्य तत्त्व की रक्षा करें।

ॐ हि ॐ पातु मे बुद्धिं परब्रह्ममयीं सदा।
ॐ धि ॐ पातु मे नित्यमहङ्कारं यथा तथा।।

'ॐ हि ॐ' हे देवि! आप मेरी परब्रह्ममयी बुद्धि की रक्षा करें। 'ॐ धि ॐ' हे देवि! आप मेरे जैसे तैसे नित्य अहंकार तत्त्व की नित्य रक्षा करें।

ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं पृथ्वी पार्थिवं वपुः।
ॐ यो ॐ पातु मे नित्यं जलं सर्वत्र सर्वदा।।

'ॐ यो ॐ' हे देवि! आप पृथ्वी तत्त्व से बने हुए पृथ्वी तत्त्व की नित्य रक्षा करें। 'ॐ यो ॐ' हे देवि! आप मेरे सर्वत्र और सर्वदा जल तत्त्व की नित्य रक्षा करें।

ॐ नः ॐ पातु मे नित्यं तेजःपुञ्जं यथा तथा।
ॐ प्र ॐ पातु मे नित्यमनिलं देहकारणम्।।

'ॐ नः ॐ' हे देवि! आप मेरे तेजपुञ्ज की जैसे भी हो वैसे नित्य रक्षा करें। 'ॐ प्र ॐ' हे देवि! आप मेरे शरीर के कारण वायु तत्त्व की नित्य रक्षा करें।

ॐ चो ॐ पातु मे नित्यमाकाशं शिवसन्निभम्।
ॐ द ॐ पातु मे जिह्वां जपयज्ञस्य कारणम्।।

'ॐ चो ॐ' हे देवि! आप मेरे शिव समीप रहने वाले आकाश तत्त्व की नित्य रक्षा करें। 'ॐ द ॐ' हे देवि! आप मेरे जप और यज्ञ के कारण जिह्वा की रक्षा करें।

ॐ यात् ॐ पातु मे चित्तं शिवज्ञानमयं सदा।
त:त्त्वाानि पातु मे नित्यं गायत्री परदेवता।।

'ॐ यात् ॐ' हे देवि! आप मेरे शिवज्ञान से युक्त चित्त की सदा रक्षा करें। इस प्रकार हे परदेवता गायत्री आप मेरे सब तत्त्वों की नित्य रक्षा करें।

ॐ भूर्भुव:स्व: पातु नित्यं ब्रह्माणी जठरं क्षुधाम्।
तृष्णां मे ससतं पातु ब्राह्मणी भूर्भुवः स्वरः।।

'ॐ भूर्भुवः स्वः' हे ब्रह्माणी! आप मेरे पेट की क्षुधा की नित्य रक्षा करें तथा 'ॐ भूर्भुवः स्व' ब्रह्माणी मेरी तृष्णा (प्यास) की नित्य रक्षा करें।

इस कवच के लाभ के वारे में वताया गया है कि–

अस्याः श्रीगायत्र्याः परब्रह्म ऋषिः, ऋग्यजुःसामाथर्वाणिच्छन्दांसि, गायत्री ब्राह्मणो देवता धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोगः।

ॐ तत्सवितुर्वरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

क्रामक्रोधादिकं सर्वं स्मरणाद्याति शाम्यताम्।
इदं कवचमज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेद्यदि।।
शतकोटिजपेनैव न सिद्धिर्जायते प्रिये।
गायत्रीवचनात् सर्वं स्मरणात् सिद्ध्यति ध्रुवम्।।
पठित्वा कवचं विप्रो गायत्रीं सकृदुच्चरेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् द्विजः।।
इदं कवचमज्ञात्वा कवचान्यत् पठेत्तु यः।
सर्वं तस्य वृथा देवि त्रैलोक्यमङ्गलादिकम्।।
गायत्रीकवचं यस्य जिह्वायां विद्यते सदा।
व्यर्थं भवति चार्वङ्गि तज्जपं वनरोदनम्।।

इस कवच के स्मरण मात्र से काम, क्रोध आदि सव शान्त हो जाते हैं तथा इस कवच को न जानकर यदि जो गायत्री का जप करे तो सौ करोड़ जप द्वारा भी सिद्धि नहीं होती है। गायत्री वचन से और स्मरण से सब निश्चित ही सिद्ध हो जाता है। इस कवच को पढ़कर जो एक बार गायत्री का उच्चारण करे

तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है तथा इस कवच को न जानकर अन्य कवच को जो उच्चारण करता है, उसके समस्त मंगलादि कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। यही नहीं गायत्री कवच जिह्वा पर सदा विद्यमान है तो उसकी जिह्वा जपं एवं पूजन में पवित्र रहती है।

द्वादशाङ्गुलमितं काष्ठमुदुम्बरभवं प्रिये!।
तस्योपरि यजेद् देवि! विग्रहान् भूतभैरवान्।।4।।
जयदुर्गा गणेशं च विष्ण्वीशान् लोकपालकान्।
ततो भुक्त्वा हरिष्यान्नं ततः परदिने जपेत्।।5।।

अब भगवान् शंकर बताते हैं कि कीलक के ऊपर पूजा कैसे करनी चाहिए। वे कहते हैं कि हे प्रिये! उदुम्बर की लकड़ी का बना हुआ एक 12 अंगुल लम्बा-चौड़ा काष्ठ लेना चाहिए, उसके ऊपर हे देवि! भूतभैरव के शरीरों की पूजा करनी चाहिए तथा जय दुर्गा, गणेश, विष्णु, ईशान और लोकपालों की पूजा करनी चाहिए। उसके बाद हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए, उसके बाद फिर दूसरे दिन भी जप करना चाहिए।।4-5।।

कृतसङ्कल्प एवासौ पूजयेत् परमेश्वरीम्।
प्रातःकालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि।।6।।
न्यूनाधिकं न जप्तव्यं देवताभावसिद्धये।

फिर साधक को संङ्कल्प लेकर परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिए तथा प्रात:काल से अच्छी प्रकार आरम्भ करके दोपहर तक जप करना चाहिए तथा देवता के भाव की सिद्धि के लिए प्रात:काल से दोपहर तक कम या अधिक समय तक नहीं जप करना चाहिए।।6।।

युगभेदविधानं हि कथयामि शृणुष्व तत्।।7।।
सत्ये द्वादशलक्षं तु त्रेतायां च त्रिलक्षकम्।
चतुर्लक्षं द्वापरे च एकलक्षं कलौ जपेत्।।8।।

इसके बाद शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवि! अव मैं तुम्हें युग भेद विधान बताता हूँ, उसे सुनिये। अव सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग में कितने बार मन्त्र का जाप करना चाहिए। यह बताते हुए भगवान् शंकर कहते है कि हे देवि! सत्ययुग में 12 लाख बार और त्रेता युग में 3 लाख बार द्वापर में चार लाख बार तथा कलियुग में एक लाख बार जप करना चाहिए।।7-8।।

एवंविधं जपं कृत्वा होमयेज्ज्वलदिन्धने।
दशांशं परमेशानि! तद्दशांश तु तर्पयेत्॥9॥

इस प्रकार युगभेद के अनुसार उपर्युक्त संख्या में जप करके उन मन्त्रों की संख्या का दशवां भाग जलते हुए ईंधन में होम करना चाहिए और हवन में दी गयी आहुतियों की संख्या का दशवां भाग तर्पण करना चाहिए॥9॥

तद्दशांशाभिषेकं च ब्राह्मणान् भोजयेत् तथा।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् विभवस्यानुरुपतः॥10॥

उस तर्पण के बाद तर्पण का दशवां भाग ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा फिर अपने-अपने वैभव के अनुसार गुरु के लिए दक्षिणा देनी चाहिए॥10॥

एतज्जपं महेशानि मन्त्रः सिध्यति निश्चितम्।
सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः॥11॥

भगवान् शंकर कहते हैं कि हे महेशानि! ग्रह जप निश्चित ही मन्त्र को सिद्ध करता है तथा जिसने मन्त्र को सिद्ध कर लिया, वह साक्षात् शिव हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥11॥

सम्यगनुष्ठिते मन्त्र यदि सिद्धिर्न जायते।
पुनस्तेनैव कर्तव्यं साधकैर्मन्त्रसिद्धये॥12॥

उपर्युक्त प्रकार से सम्यक् अनुष्ठान करने पर भी यदि मन्त्र की सिद्धि नहीं होती है तो फिर साधकों द्वारा उसी प्रकार से पुनः मन्त्रसिद्धि करनी चाहिए॥12॥

ततो यदि न सिध्येत तदुपायं शृणु प्रिये!।
श्रीबीजपुटितं कृत्वा जपेदयुतमानतः॥13॥
अथवा परमेशानि! प्रणवेन पुटीकृतम्।
जपेद् दशसहस्त्रं तु ततः सिद्धो भवेन्नरः॥14॥

शंकर जी कहते हैं कि हे प्रिये! यदि उसी प्रकार से पुनः जाप करने से भी मन्त्र सिद्धि नहीं होती है तो उसका उपाय सुनो—तब हे देवि! श्रीबीज का पुट करके 10 हजार बार जाप करना चाहिए। अथवा हे परमेशानि! प्रणव (ॐ) का पुट करके 10 हजार बार जाप करना चाहिए, उसके बाद मनुष्य सिद्ध पुरुष हो जाता है॥13-14॥

सिद्धे मनौ ततः कुर्यात् प्रयोगं परमेश्वरि!

हे परमेश्वरि! सिद्धि मन्त्र हो जाने पर मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

इति ते कथितं देवि गुह्याद् गुह्यतमं प्रिये।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणसंशयसम्भवे।।15।।

।।इति श्री मायातन्त्रे दशमः पटलः।।

❖ ❖ ❖

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार मैंने तुम्हें गूढ़ से गूढ़ तत्त्व कहा है। अतः इसे प्राणों का संशय होने पर भी किसी को नहीं बताना चाहिए।।15।।

।इस प्रकार मायातन्त्र में दशवां पटल समाप्त हुआ।।

अथैकादशः पटलः

श्री महादेव उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि योगसाधनमुत्तमम्।
विना भावेन देवेशि न सिध्येत् कदाचन॥1॥

महादेव ने कहा कि हे प्रिये! पार्वति! सुनो अब मैं तुम्हे योग के उत्तम साधन को बताऊंगा; परन्तु हे देवेशि! विना भावविभोर हुए कभी भी सिद्धि नहीं हो सकती। अतः जिसकी सिद्धि करनी हो उसमें भावविभोर हो जाना परम आवश्यक है॥1॥

त्रिधा भावो महेशानि! साधकानां सुखप्रदः।
परं मुक्तिमवाप्नोति भावस्थः साधकाग्रणीः॥2॥
पशुभावस्थितो मन्त्रो बहुक्लेशेन सिध्यति।
दिव्यभावयुतो देवि! साक्षाद् गङ्गाधरः स्वयम्॥3॥

अतः हे महेशानि! साधकों को सुख प्रदान करने वाला 3 प्रकार का भाव है। पशुभाव में स्थित मन्त्र बहुत ही कष्ट से सिद्ध होता है तथा हे देवि! यह पशुभाव दिव्य भाव से युक्त है। यह स्वयं साक्षात् गंगाधर अर्थात् शिव है। अर्थात् साक्षात् मेरा भाव है॥2-3॥

विशेषः—अन्य पाण्डुलिपि में बहुक्लेशेन के स्थान पर बहूद्देशेन सिध्यति पाठ है, जिसके अनुसार अर्थ होता है कि पशुभाव बहुत से उद्देश्यों से सिद्ध होता है अर्थात् इससे बहुत से उद्देश्यों की सिद्धि होती है।

वीरभावस्थितो मन्त्रः कलावाशु सुसिध्यति।
दिवा हविष्यं भोक्तव्यं पूरणे श्रवणादिकम्॥4॥
रात्रौ शक्तियुतो मन्त्री पञ्चमेन प्रपूजयेत्।
लताप्रधानं देवेशि साधकस्य सुनिश्चितम्॥5॥

कलियुग में वीरभाव में स्थित मन्त्र सिद्ध हो जाता है। दिन में हविष्य (हवन से अवशिष्ट खीर, पंचामृत आदि का भोग करना चाहिए और रात्रि में शक्तियुत् मन्त्र जपने वाले को पञ्चम मकार से पूजन करना चाहिए। अतः हे देवेशि। साधक को लताप्रधान सुनिश्चित है॥4-5॥

विशेष—पञ्चमेन का अर्थ यहाँ पञ्चम लिया जा सकता है; क्योंकि वाम मार्गी पूजा में पांच मकारों द्वारा ही देवी की सिद्धि की जाती है। अतः यहाँ

पञ्चम मकार मैथुन है। इसलिए दिन में हवन करना चाहिए और उसका शेष हविष्य का भोग करना चाहिए और रात्रि में शक्तियुक्त हो मैथुन करना चाहिए; परन्तु दक्षिण मार्ग के अनुसार प्रञ्चामृत हैं—दूध, चीनी, घृत, दही और मधु तथा पाँचवां अमृत मधु है। अतः मधु से ही पूजा करना अधिक उचित है।

मातृभावेन सम्पूज्य जपेदेकाग्रमानसः।
कालीवदपरां विद्यां कालीवत् पूजयेत् सदा॥6॥
कालीवत् साधयेद् देवीं कालीवच्चिन्तयेत् सदा।
या काली सा महादुर्गा या दुर्गा सैव तारिणी॥7॥

मां दुर्गा की मातृभाव से सम्यक् प्रकार से पूजा करके एकाग्रचित्त हो जप करना चाहिए। काली के समान अपराविद्या अर्थात् सरस्वती को पूजना चाहिए। काली के समान ही देवी की साधना करनी चाहिए तथा काली के समान ही सदैव देवी का चिन्तन करना चाहिए; क्योंकि जो काली है वहीं, महाकाली है तथा जो काली हैं, वहीं दुर्गा है तथा जो दुर्गा है, वही तारिणी है॥6-7॥

दुर्गायाः कालिकायाश्च कालं सङ्गमिहोदितम्।
अभेदेन यजेद् देवीं सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि॥8॥

दुर्गा और कालिका का इस सृष्टि पर उदय होना एक ही समय का है। अर्थात् दोनों एक ही समय में प्रकट हुई हैं। इसलिए इन दोनों में किसी प्रकार भेद न रखते हुए इनका पूजन-यजन करना चाहिए। अभेद से अर्थात् भेद न रखते हुए इनका यजन करने से साधक को आठ प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती है॥8॥

अन्तर्योगबहिर्योगरतो मन्त्री प्रपूजयेत्।
पूर्वोक्तदूषितो मन्त्रः सर्वं सिध्यति निश्चितम्॥9॥

यदि मन्त्र का जाप करने वाला साधक अन्तर्योग और बहिर्योग में रहकर अच्छी प्रकार से पूजन करे तो भले ही उसके पूर्वोक्त मन्त्र दूषित हुए हों, वह निश्चित सब प्रकार सिद्धि प्राप्त करता है॥9॥

कुलीनः सर्वमन्त्राणां जापकः परिकीर्तितः।
कुलीनः सर्वमन्त्राणामधिकारीति गीयते॥10॥

कुलीन व्यक्ति अर्थात् कुलपूजा करने वाला व्यक्ति सब मन्त्रों का

जापक माना गया है तथा कुलीन ही सब मन्त्रों का अधिकारी है, ऐसा गाया जाता है।।10।।

कुलीनः परदेवीनां सदा प्रियतमः प्रिये।
कुलाचारात् परं नास्ति कलौ देवि सुसिद्धये।।11।।

भगवान् शंकर कहते हैं कि हे पार्वति! कुलीन ही परदेवियों को सदा ही प्रियतम होता है। इसलिए हे देवि। कलियुग में अच्छी सिद्धि के लिए कुलाचार से बढ़कर कोई पूजा नहीं है।।11।।

लतायाः साधनं वक्ष्ये शृणुष्व हरवल्लभे।
शतं कोशे शतं भाले शतं सिन्दूरमण्डले।।12।।
स्तनद्वन्द्वे शतद्वन्द्वं शतं नाभौ महेश्वरि।
शतं योनौ महेशानि उत्थाय च शतत्रयम्।।13।।

भगवान शंकर ने कहा कि हे देवि। अब मैं तुम्हें लता का साधन बताऊंगा, वह है कि 100 मन्त्र नारी के केश पर पढ़े, सौ मन्त्र नारी के मस्तक पर पढ़े, सौ सिन्दूर लगाने के स्थान पर पढ़े, दोनों स्तनों पर सौ मन्त्र पढ़े सौ मन्त्र नाभि पर पढ़े तथा हे महेश्वरि! सौ मन्त्र योनि पर और तीन सौ मन्त्र योनि को उठाकर पढ़े। इस प्रकार एक हजार मन्त्रों का जप करके मनुष्य को सब सिद्धों का स्वामी हो जाना चाहिए।।12-13।।

एवं दशशतं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि साधनं भुवि दुर्लभम्।।14।।
रजोऽवस्थां समानीय तत्तनौ स्वेष्टदेवताम्।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम्।।15।।
शतत्रयं च षट्त्रिंशदधिकं प्रत्यहं जपेत्।
शवसाधनसाहस्त्रं फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।।16।।

शंकर जी कहते हैं कि हे देवि! अब मैं तुम्हे इस पृथ्वी पर दुर्लभ अन्य साधन को बताऊंगा। वह है कि जब नारी रजस्वला (माहवारी) हो रही है, ऐसी अवस्था में उसे अच्छी प्रकार आदर के साथ लाकर और उसके शरीर में अपने इष्ट देवता की कल्पना कर, उसे पूजन करके महारात्रि में तीन दिन तक मनु का जाप करना चाहिए और प्रतिदिन 336 बार जप करे और शवसाधन (मृतशरीर) पर सहस्त्र जप करने पर निःसन्देह फल प्राप्त होता है।।14-16।।

अथान्यत् साधनं वक्ष्ये सावधानाऽवधारय।
परकीयलताचक्रे सम्पूज्य स्वेष्टदेवताम्।।17।।
अष्टोत्तरशतं पूर्वं चतुर्वक्त्रे जपेद् बुधः।
ततस्तां नवभिः पुष्पैर्यजेदष्टोत्तरं शतम्।।18।।
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा जपेदष्टोत्तरं शतम्।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियः कविः।
षोडशाहेन च भवेत् सत्यं सत्यं न संशयः।।19।।

शंकर जी ने कहा कि इसके बाद मैं दूसरा साधन बताऊंगा तुम सावधान होकर सुनो—दूसरे की लताचक्र में अर्थात् परस्त्री आदि में अपने इष्ट देवता की कल्पना कर उसे अच्छी प्रकार से पूजन कर ज्ञानी मनुष्य को पहले चार मुख में 108 बार जप करना चाहिए, उसके बाद नवीन फूलों से 108 बार यज्ञ करना चाहिए। उसके बाद पूर्ण आहुति देकर 108 बार जप करना चाहिए। इस प्रकार ऐसा करने पर मनुष्य 16 दिन में ही धनवान्, बलवान्, भाषणकला में कुशल, सब स्त्रियों का प्रिय और कवि हो जाना चाहिए। यह सत्य है, सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है।।17-19।।

समयाचारनिरतः सदा तद्गतमानसः।
किं तस्य पापपुण्यानि येन देवी समर्चिता।।20।।

समयाचार में जो व्यक्ति लगा हुआ है और सदा समयाचार में जिसका मन लगा हुआ है और जिसने समयाचार द्वारा देवी की सम्यक् प्रकार से अर्चना की है, उसके पाप और पुण्य कहाँ अर्थात् उसके पाप और पुण्य नहीं रहते)। पाप-पुण्यों का प्रश्न ही नहीं होता।।20।।

केवलं निशि जापेन मन्त्रः सिध्यति निश्चितम्।
वृथा न गमयेत् कालं दुरालापादिना सुधीः।।21।।

केवल रात में जप करने से निश्चित मन्त्र सिद्ध होता है। अतः अच्छी बुद्धि वाले मनुष्य को बुरी बातों से समय को बर्बाद नहीं करना चाहिए।।21।।

गमयेत् साधकः श्रेष्ठः कवचादिप्रपाठतः।
परोपकारनिरतः सदाह्लादमनाः सुधीः।22।।

श्रेष्ठ साधक को कवच आदि का पाठ करते हुए दूसरों की भलाई में सदा लगा रहते हुए सदा प्रसन्न रहते समय बिताना चाहिए।।22।।

गोपयेत् सततं देवि कलमार्गं विशेषतः।
स्नानयन्त्रे शिलायन्त्रे बिल्वमूले घटोपरि॥23॥
लिङ्गे योनौ महापीठे शून्यागारे चतुष्पथे।
कुट्टिनीगृहमध्ये च कदलीमण्डपे तथा॥24॥
पुष्पयुक्तभगे देवि गणिकागेहमध्यतः।
महारण्ये प्रान्तरे च शवे च शक्तिसङ्गमे॥25॥
पञ्चानन्दपरो भूत्वा साधयेत् सकलेप्सितान्।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥26॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! विशेष रूप से कुलमार्ग को निरन्तर गुप्त रखना चाहिए तथा कुलमार्ग गत पूजा कहाँ करनी चाहिए? यह बताते हुए कहते हैं कि स्नान यन्त्र (स्नानागार) में, शिलायन्त्र पर बिल्ववृक्ष के मूल में, घाट पर लिङ्ग में, योनि में और महापीठ में, सूने घर में, चौराहे पर, कुटिनी के घर में, केले के मण्डप में, पुष्पयुक्त भग द्वारा, वेश्या के घर के मध्य में, मृत व्यक्ति के शव पर तथा शक्तिसङ्गम में अर्थात् शक्तिपीठों में कुलाचार पूजा करने वाला साधक पांच आनन्दों के युक्त होकर समस्त इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है तथा वह जो-जो चाहता है, उस-उसको निश्चित प्राप्त करता है।।23-26।।

विशेष:-पंचानन्दपर: का अर्थ है-पांच आनन्दों से युक्त होकर अत: पांच आनन्द पञ्चमकार है, जिसमें पहले सबसे साधक को मद्यपान करना है, फिर मछली और मांस खाना है, फिर जब मद्य की मुद्रा हो जाये तब मैथुन करना है। तब किसी भी नारी, वह चाहे स्वकीया हो अथवा परकीया हो, उसमें इष्ट देवता की कल्पना कर मैथुन करना है, इससे जिस देवी की कल्पना की है, उसकी सिद्धि होती है। लिङ्ग में योनि में का अर्थ होता है कि जहाँ पर शिवमन्दिर हो; क्योंकि शिव मन्दिर में लिङ्ग और योनि दोनों होते हैं।

नूनं तद्गृहमागत्य कुबेरो दीयते वसु।
वातस्तम्भं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः॥27॥
वह्नेः शैत्यं करोत्येव महामायाप्रसादतः।
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रैलोक्ये हि च शङ्करि॥28॥
योनिकुण्डे कृते होमे साक्षाद् गङ्गाधरो भवेत्।

भगवान् शंकर कहते हैं कि हे देवि! जब इस प्रकार पूजा की जाती

है तो इस कुलाचार पूजा से प्रसन्न धन के देवता कुबेर उसके घर आकर सब प्रकार की दौलत प्रदान करते हैं तथा महामाया के प्रसाद से वह साधक हवा को रोक सकता है। यही नहीं वह अग्नि को भी शीतल कर सकता है तथा हे पार्वति! उस साधक के लिए तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं। अतः योनिकुण्ड में हवन करने से मनुष्य साक्षात् गंगाधर शंकर हो जाना चाहिए।।27-28।।

पूजास्थाने कामबीजं लिखित्वा शिवयोजनात्।।29।।
कवचं प्रपठेद् यस्तु शतावृत्तं सुरेश्वरि।
वाग्मी भवति मासेन सत्यं सत्यं न संशयः।।30।।
अचिराल्लभते देवि! कवितां सुखसाधिनीम्।
मोदते सर्वलोकेषु शिववत् परमेश्वरि!।।31।।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवों की स्वामिनि पार्वति! पूजा के स्थान में शिवपूजन से अथवा शिव के साथ कामबीज को लिखकर 100 बार कवच का पाठ करे, वह एक महीने में भाषण देने में योग्य हो सकता है। यह सत्य है सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है तथा हे देवि! शीघ्र-शीघ्र ही वह सुखसाधनी कविता को प्राप्त करता है अर्थात् कवि हो जाता है तथा हे परमेश्वरि! वह साधक सब लोकों में शिव के समान आनन्दित रहता है।।29-31।।

इति ते कथितं देवि! सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
प्रकाशितं तव स्नेहान्न प्रकाश्यं कदाचन।।32।।

शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार मैंने तुम्हें सब तन्त्रों के छिपे हुए गूढ़ रहस्य को बताया है तथा मैंने इस गूढ़तम ज्ञान को तुम्हारे प्रेम के कारण प्रकाशित किया है। अतः तुम इस गूढ़ ज्ञान को कभी भी किसी को मत बताना।।32।।

दुर्गामन्त्रता पुंसो योषिद् भूतिविवर्द्धिनी।
सा चेद् भवति संक्रुद्धा धनमायुश्च नाशयेत्।।33।।

पुरुष को दुर्गा के मन्त्र में रत रहना चाहिए, तब उनकी स्तुति ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली होती है। यदि वह स्त्री बहुत अधिक क्रोध करने वाली होती है तो वह धन और आयु को नष्ट करने वाली होनी चाहिए। भाव यही है कि पुरुष को मां दुर्गा के मन्त्रों का जाप करते रहना चाहिए तथा यदि वह दुर्गा देवी के

मन्त्रों को पढ़ता हुआ जिस स्त्री के साथ मैथुन करे तो वह स्त्री यदि प्रसन्न हो जाये तो धन दौलत आदि बढ़ाने वाली होती है तथा यदि वह क्रोधी स्वभाव वाली हो जाये तो पति की आयु तथा धन को नाश करने वाली होती है।।33।।

वृथा न्यासो वृथा पूजा वृथा जपो वथा स्तुतिः।
वृथा सदक्षिणो होमो यद्यप्रियकरः स्त्रियाः।।34।।

यदि स्त्रियां अप्रिय करने वाली हों अर्थात् जिस घर में स्त्री प्रेम करने वाली न हों, अर्थात् पति से प्रेम न करती हो, वहाँ पर किसी देवता का न्यास रखना व्यर्थ है, वहाँ किसी देवता की पूजा व्यर्थ है, वहाँ किसी देवता का जप तथा स्तुति व्यर्थ है, उस घर में दक्षिणा देने के साथ हवन करना भी व्यर्थ है।।34।।

बुद्धिर्बलं यशो रूपमायुर्वित्तं सुतादयः।
तस्य नश्यन्ति सर्वाणि योषिन्निन्दापरस्य च।।35।।

जो मनुष्य स्त्री अर्थात् पत्नी की निन्दा बुराई करता रहता है, उस व्यक्ति की बुद्धि, बल, यश, रूप, आयु, धन और पुत्र-पुत्री आदि सब नष्ट हो जाते हैं।।35।।

मातापित्रोर्वरं त्यागस्त्याज्यौ शम्भुस्तथा हरिः।
वरं देवी परित्याज्या नैव त्याज्या स्वकामिनी।
वरं जनमुखान्निन्दा वरं वा गर्हितं यशः।।36।।
वरं प्राणाः परित्याज्या न कुर्यादप्रियं स्त्रियाः।
न धाता नाच्युतः शम्भुर्न च वामा सनातनी।।37।।
योषिदप्रियकर्तारं रक्षितुं च क्षमो भवेत्।
दुर्गार्चनरतो देवि महापातकसङ्कैः।।
दोषैर्न लिप्यते देवि पद्मपत्रमिवाम्भसा।।38।।

।।इति श्रीमायातन्त्रे एकादशः पटलः ।।

❖❖❖

परिस्थितियों वश मनुष्य माता-पिता को छोड़ सकता है, उनका त्याग अच्छा है। शम्भु तथा हरि (विष्णु) का त्याग भी अच्छा है, यदि देवी का त्याग करना है, वह भी अच्छा है, परन्तु अपनी पत्नी कभी भी त्याज्य नहीं है अर्थात् पुरुष को भले ही माता-पिता, शिव, विष्णु, दुर्गा आदि का त्याग करना पड़े तो कर देना चाहिए, परन्तु अपनी पत्नी का त्याग नहीं करना चाहिए।

संसार में मनुष्यों के मुख से यदि निन्दा होती है, वह अच्छी है, सभी ओर यश की हानि हो रही हो अर्थात् अपकीर्ति होती हो, वह अच्छी है। अगर प्राण भी त्यागने पड़ें तो अच्छा है, परन्तु स्त्रियों को कभी नाराज नहीं करना चाहिए।

स्त्रियों का अनिष्ट करने वाला रक्षा करने योग्य नहीं होता। अतः हे देवि! पार्वति! दुर्गा की पूजा में लगा हुआ व्यक्ति उसी प्रकार महापाप से युक्त दोषों से लिप्त नहीं होता, जिस प्रकार कमल का पत्ता जल की गन्दगी से लिप्त नहीं होता।।36-38।।

।।इस प्रकार मायातन्त्र में एकादश पटल समाप्त हुआ।।

अथ द्वादशः पटलः

श्री देवी उवाच

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि कवचं भुवि दुर्लभम्।
यस्यापि पठनाद् देवि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।।1।।

महादेव ने पार्वती जी से कहा कि हे प्रिये! सुनो! अब मैं तुम्हें पृथ्वी पर दुर्लभ कवच को बताऊंगा। जिसके पढ़ने से हे देवि! मनुष्य सब सिद्धियों का ईश्वर हो जाना चाहिए।।1।।

इन्द्रोऽपि धारणाद् यस्य प्राप्नुयाद् राज्यमुत्तमम्।
कृष्णेन पठितं देवि भूतापमारणाय च।।2।।

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! इस कवच को धारण करने से इन्द्र ने भी उत्तम राज्य को प्राप्त किया था तथा हे देवि! पृथ्वी के ताप को नष्ट करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी कवच का पाठ किया था।।2।।

शुकदेवोऽपि यद् धृत्वा सर्वयोगविशारदः।
तस्य श्रीभुवनेश्वरी कवचस्य महेश्वरि।।3।।

जिस कवच को धारण करने वाले शुकदेव भी सब प्रकार के योगों में विशारद हुए ।अतः हे महेश्वरि! उस कवच की देवी श्री भुवनेश्वरी हैं।।3।।

सर्वार्थे विनियोगः स्यात् प्राणायामं ततश्चरेत्।
मायाबीजं शिरः पातु कामबीजं तु बालकम्।।4।।
दुर्गाबीजं नेत्रयुग्मं नासिकां मन्त्रदा मनुः।
वदने दक्षिणाबीजं ताराबीजं तु गण्डयोः।।5।।
षोडशी मे गलं पातु कण्ठं मे भैरवीमनुः।
हृदयं छिन्नमस्ता च उदरं बगला तथा।।6।।
धूमावती कटिं पातु मातङ्गी पातु सर्वतः।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु सर्वविद्यास्वरूपिणी।।7।।

अब भगवान् कवच का पाठ करना बताते हुए कहते हैं कि जब कवच का पाठ प्रारम्भ करना हो तब सब प्रकार के कार्यों से मन को अलग कर लेना चाहिए। उसके बाद में प्राणायाम करना चाहिए और फिर कवच को पढ़ना चाहिए।

कवच इस प्रकार है–

मायावीजं शिर पातु कामवीजं तु वालकम्।
दुर्गाबीजं नेत्रयुग्मं नासिकां मन्त्रदामनु।।
वदने दक्षिणाबीजं ताराबीजं तु गण्डयोः।
षोडशी मे गलं पातु कण्ठं मे भैरवी मनुः।।
हृदयं छिन्नमस्ता च उदरं बंगला तथा।।
धूमावतीं कटिं पातु मातंगी पातु सर्वतः।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु सर्वविद्यास्वरूपिणी।।

इसका अर्थ है—मायाबीज शिर की रक्षा करे। कामका बीज बालों की रक्षा करे। दुर्गा का वीजं शिर की रक्षा करे। मन्त्र देने वाले मनु नासिका की रक्षा करें। वदन (मुख) पर दक्षिणा का बीज रक्षा करे। दो गण्डस्थलों की रक्षा तारा का बीज करें। षोडशी देवी मेरे गले की रक्षा करे तथा उदर की रक्षा बंगलामुखी करे, धूमावती देवी मेरी कमर की रक्षा करे। मातंगी देवी मेरी सब ओर से रक्षा करे और सब विद्या स्वरूपिणी मां मेरे सभी अंगों की रक्षा करे।।4-7।।

इत्येतत् कवचं देवि पठनाद् धारणादिकम्।
कृत्वा तु साधकः श्रेष्ठो विद्यावान् धनवान् भवेत्।।8।।

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! मैंने जो अभी बताया है, यही कवच है और इस कवच को पढ़ने से धारण करके मनुष्य श्रेष्ठ और विद्यावान् हो जाना चाहिए।।8।।

पुत्रपौत्रादिसम्पन्नो ह्यन्ते याति परां गतिम्।
इदं तु कवचं गुह्यं साधकाय प्रकाशयेत्।।9।।
न दद्याद् भ्रष्टमर्त्याय न परदेवताय च।

तथा इस कवच को नित्य पढ़कर धारण करने से मनुष्य पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न होकर अन्त में परागति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। वैसे तो हे देवि! यह कवच अत्यन्त गूढ़ है , इसे छिपाना ही चाहिए। केवल साधना करने वाले को बताना ही चाहिए; परन्तु भ्रष्ट पुरुष के लिए तथा अन्य देवता की पूजा करने वाले पुरुष को नहीं देना चाहिए।।9।।

इदं यन्त्रं महेशानि त्रिषु लोकेषु गोपितम्।।10।।
सर्वसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम्।
कल्पद्रुमसमं ज्ञेयं पूजयेत् श्रियमाप्नुयात्।।11।।

पठनाद् धारणात् सर्वं पापं क्षयति निश्चितम्।
विवादे जयमाप्नोति धनैर्धनपतिर्भवेत्।
यं यं वाञ्छति तत् सर्वं भवत्येव न संशयः॥12॥

जय मां–

।।इति श्री मायातन्त्रे द्वादशः पटलः।।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

❖❖❖

शंकर जी ने कहा कि हे देवि! यह यन्त्र तीनों लोकों में छिपा हुआ है तथा सबकी सिद्धि करने वाला है तथा साक्षात् महापाप का नाश करने वाला है। इस कवच को कल्पवृक्ष के समान समझो और कल्पवृक्ष के समान समझ कर इसकी पूजा करनी चाहिए। इस कवच को धारण करने से निश्चित ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। इसका पाठ करने से विवाद (मुकदमें) में जीत होती है और जो धनवान् है, वह धनपति हो जाना चाहिए। अतः इस कवच का पाठ करने वाला जो–जो चाहता है, वह सब उसे प्राप्त होता ही है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।।10–12।।

।।इस प्रकार श्री मायातन्त्र में बारहवां पटल समाप्त हुआ।

यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।